卐

-: लेखक :-

वाणीभूषण बा. ब्र. पं. भूरामल शास्त्री

(आचार्य ज्ञानसागर जी)

प्रेरक प्रसंग : प. पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु श्री गम्भीरसागरजी, क्षु. श्री धैर्य सागरजी महाराज के ऐतिहासिक १९९४ के श्री सोनी जी की नसियाँ, अजमेर के चातुर्मास के उपलक्ष्य में प्रकाशित ।

ट्रस्ट संस्थापक : स्व. पं. जुगल किशोर मुख्तार

ग्रन्थमाला सम्पादक एवं नियामक : डॉ. दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना (मध्य प्रदेश)

संस्करण : द्वितीय

प्रति : 2000

मूल्य : स्वाध्याय

(नोट :- डाक खर्च भेजकर प्रति निशुल्क प्राप्ति स्थान से मंगा सकते है ।

प्राप्ति स्थान :

*** सोनी मंन्दिर ट्रस्ट**
सोनीजी की नसियाँ, अजमेर (राज.)

*** डा. शीतलचन्द जैन**
मंत्री – श्री वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
१३१४ अजायब घर का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

*** श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र**
मन्दिर संघी जी, सांगानेर जयपुर (राज.)

-: आशीर्वाद एवं प्रेरणा :-

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

क्षु. श्री गंभीर सागरजी, एवं क्षु. श्री धैर्य सागरजी महाराज

सौजन्यता :

श्रीमति सुशीलादेवी सोगाणी धर्मपत्नी श्री सांतिलाल सोगाणी

नसीराबाद

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज,

अजमेर (राज.)

प्रकाशन :

वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, जयपुर

-: मुद्रण एवं लेज़र टाइप सैटिंग :-

निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टर्स

पुरानी मण्डी, अजमेर फोन : 22291

प्रकाशकीय समर्पण

आ. श्री विद्यासागर जी

卐
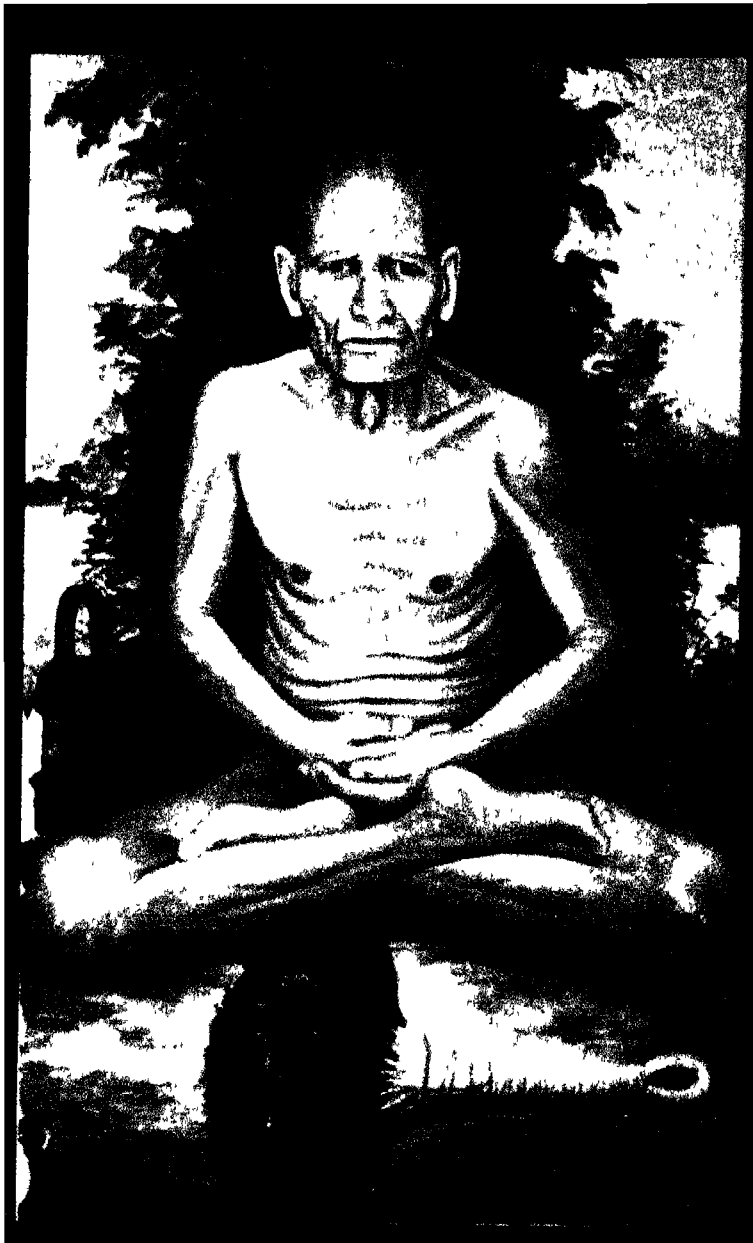
मु. श्री सुधासागर जी

पंचाचार युक्त
महाकवि, दार्शनिक विचारक,
धर्मप्रभाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द
की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों में
एवं
इनके परम सुयोग्य
शिष्य ज्ञान, ध्यान, तप युक्त
जैन संस्कृति के रक्षक, क्षेत्र जीर्णोद्धारक,
वात्सल्य मूर्ति, समता स्वाभावी, जिनवाणी के यथार्थ
उद्घोषक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों में
सकल दि. जैन समाज एवं दिगम्बर जैन समिति,
अजमेर (राज.) की ओर से
सादर समर्पित ।

जैन साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ एवं अनुसंधाता स्वर्गीय सरस्वतीपुत्र पं. जुगल किशोर जी मुख्तार ''युगवीर'' ने अपनी साहित्य इतिहास सम्बन्धी अनुसन्धान- प्रवृत्तियों को मूर्त्तरुप देने के हेतु अपने निवास सरसावा (सहारनपुर) में ''वीर सेवा मंदिर'' नामक एक शोध संस्था की स्थापना की थी और उसके लिए क्रीत विस्तृत भूखण्ड पर एक सुन्दर भवन का निर्माण किया था, जिसका उद्घाटन वैशाख सुदि 3 (अक्षय-तृतीया), विक्रम संवत् 1993, दिनांक 24 अप्रैल 1936 में किया था। सन् 1942 में मुख्तार जी ने अपनी सम्पत्ति का ''वसीयतनामा'' लिखकर उसकी रजिस्ट्री करा दी थी। ''वसीयतनामा'' में उक्त ''वीर सेवा मन्दिर'' के संचालनार्थ इसी नाम से ट्रस्ट की भी योजना की थी, जिसकी रजिस्ट्री 5 मई 1951 को उनके द्वारा करा दी गयी थी। इस प्रकार पं मुख्तार जी ने वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट की स्थापना करके उनके द्वारा साहित्य और इतिहास के अनुसन्धान कार्य को प्रथमतः अग्रसारित किया था ।

स्वर्गीय बा. छोटेलालजी कलकत्ता, स्वर्गीय ला राजकृष्ण जी दिल्ली, रायसाहब ला उल्फतरायजी दिल्ली आदि के प्रेरणा और स्वर्गीय पूज्य क्षु गणेश प्रसाद जी वर्णी (मुनि गणेश कीर्ति महाराज) के आशीर्वाद से सन् 1948 में श्रद्धेय मुख्तार साहब ने उक्त वीर सेवा मन्दिर का एक कार्यालय उसकी शाखा के रुप में दिल्ली में, उसके राजधानी होने के कारण अनुसन्धान कार्य को अधिक व्यापकता और प्रकाश मिलने के उद्देश्य से, राय साहब ला उल्फतराय जी के चैत्यालय में खोला था । पश्चात् बा छोटे लालजी, साहू शान्तिप्रसाद जी और समाज की उदारतापूर्ण आर्थिक सहायता से उसका भवन भी बन गया, जो 21 दरियागंज दिल्ली में स्थित है और जिसमें ''अनेकान्त'' (मासिक) का प्रकाशन एवं अन्य साहित्यिक कार्य सम्पादित होते हैं । इसी भवन में सरसावा से ले जाया गया विशाल ग्रन्थागार है, जो जैनविद्या के विभिन्न अङ्गो पर अनुसन्धान करने के लिये विशेष उपयोगी और महत्वपूर्ण है ।

वीर-सेवा मन्दिर ट्रस्ट गंथ-प्रकाशन और साहित्यानुसन्धान का कार्य कर रहा है । इस ट्रस्ट के समर्पित वयोवृद्ध पूर्व मानद मंत्री एवं वर्तमान में अध्यक्ष डा दरबारी लालजी कोठिया बीना के अथक परिश्रम एवं लगन से अभी तक ट्रस्ट से 38 महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है । आदरणीय कोठियाजी के ही मार्गदर्शन में ट्रस्ट का संपूर्ण कार्य चल रहा है । अत: उनके प्रति हम ह्रदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और कामना करते हैं कि वे दीर्घायु होकर अपनी सेवाओं से समाज को चिरकाल तक लाभान्वित करते रहें। ट्रस्ट के समस्त सदस्य एवं कोषाध्यक्ष माननीय श्री चन्द संगल एटा, तथा संयुक्त मंत्री ला.सुरेशचन्द्र जैन मरसावा का सहयोग उल्लेखनीय है । एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं ।

संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागरजी के परम शिष्य पूज्य मुनि 108 सुधासागर जी महाराज के आर्शीवाद एवं प्रेरणा से दिनांक 9 से 11 जून 1994 तक श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सागांनेर में आचार्य विद्यासागरजी के गुरु आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व परअखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में निश्चय किया था कि आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त ग्रन्थों का प्रकाशन किसी प्रसिद्ध संस्था से किया जाय । तदनुसार समस्त विद्वानों की सम्मति से यह कार्य वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट ने सहर्ष स्वीकार कर सर्वप्रथम वीरोदयकाव्य के प्रकाशन की योजना बनाई और निश्चय किया कि इस काव्य पर आयोजित होने वाली गोष्ठी के पूर्व इसे प्रकाशित कर दिया जाय । परम हर्ष है कि पूज्य मूनि 108 सुधासागार महाराज का संसघ चातुर्मास अजमेर में होना निश्चय हुआ और महाराज जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर श्री दिगम्बर जैन समिति एवम् सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर ने पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज के वीरोदय काव्य सहित समस्त ग्रन्थों के प्रकाशन एवं संगोष्ठी का दायित्व स्वयं ले लिया और ट्रस्ट को आर्थिक निर्भार कर दिया । एतदर्थ ट्रस्ट अजमेर समाज का इस जिनवाणी के प्रकाशन एवं ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिये आभारी है ।

प्रस्तुत कृति **दयोदय** के प्रकाशन में जिन महानुभाव ने आर्थिक सहयोग एवं प्रूफ रिडिंग में श्री कमलकुमारजी बड़जात्या ने अथक परिश्रम किया तथा

मुद्रण में निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर ने उत्साह पूर्वक कार्य किया है। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में उस संस्था के भी आभारी है जिस संस्था ने पूर्व में यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। अब यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। अतः ट्रस्ट इसको प्रकाशित कर गौरवान्वित है। जैन जयतुं शासनम्।

दिनाङ्क : 13-14-15 अक्टूबर 1994
वीरोदय महाकाव्य पर अ. भा. विद्वत संगोष्ठी

डॉ. शीतल चन्द जैन
मानद मंत्री
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
1314 अजायब घर का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की जीवन यात्रा आँखों देखी

आलेख - निहाल चन्द्र जैन
सेवा निवृत्त प्राचार्य
मिश्रसदन सुन्दर विलास, अजमेर

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरुषों एवं नर-पुंगवों को जन्म दिया है । इन नर-रत्नों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शौर्यता के क्षेत्र में अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं । जैन धर्म भी भारत भूमि का एक प्राचीन धर्म हैं, जहाँ तीर्थंकर, श्रुत केवली, केवली भगवान के साथ साथ अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं सन्तों ने इस धर्म का अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एवं आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है ।

इस १९-२० शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परम पूज्य, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा में आचार्य श्री वीर सागरजी, आचार्य श्री शिव सागरजी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुये । मुनि श्री ज्ञान सागरजी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से वि. स २०१६, में खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा लेकर अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ हो गये थे । आप शिवसागर आचार्य महाराज के प्रथम शिष्य थे।

मुनि श्री ज्ञान सागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) में दिगम्बर जैन के छाबड़ा कुल में सेठ सुखदेवजी के पुत्र श्री चतुर्भुज जी की धर्म पत्नि घृतावरी देवी की कोख से हुआ था । आपके बड़े भ्राता श्री छगनलालजी थे तथा दो छोटे भाई और थे तथा एक भाई का जन्म तो पिता श्री के देहान्त के बाद हुआ था । आप स्वयं भूरामल के नाम से विख्यात हुये । प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में हुई । साधनों के अभाव में आप आगे विद्याध्ययन न कर अपने बड़े भाई जी के साथ नौकरी हेतु गयाजी (बिहार) आगये । वहां १३-१४ वर्ष की आयु में एक जैनी सेठ के दुकान पर आजीविका हेतु कार्य करते रहे । लेकिन आपका मन आगे पढ़ने के लिए छटपटा रहा था । संयोगवश स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने हेतु गयाजी (बिहार) आये । उनके प्रभावपूर्ण कार्यक्रमों को देखकर युवा भूरामल के भाव भी विद्या प्राप्ति हेतु

वाराणसी जाने के हुए । विद्या-अध्ययन के प्रति आपकी तीव्र भावना एवं दृढ़ता देखकर आपके बड़े भ्राता ने १५ वर्ष की आयु में आपको वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

श्री भूरामल जी बचपन से ही कठिन परिश्रमी अध्यवसायी, स्वावलम्बी, एवं निष्ठावान थे । वाराणसी में आपने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्याध्ययन किया और संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहन अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा पास की । जैन धर्म से संस्कारित श्री भूरामल जी न्याय, व्याकरण एवं प्राकृत ग्रन्थों को जैन सिद्धान्तानुसार पढ़ना चाहते थे, जिसकी उस समय वाराणसी में समुचित व्यवस्था नहीं थी । आपका मन क्षुब्ध ही उठा, परिणामत: आपने जैन साहित्य, न्याय और व्याकरण को पुन:र्जीवित करने का भी दृढ़ संकल्प ही लिया । अढ़िग विश्वास, निष्ठा एवं संकल्प के धनी श्री भूरामल जी ने कई जैन एवं जैनेन्तर विद्वानों से जैन वाँङ्मय की शिक्षा प्राप्त की । वाराणसी में रहकर ही आपने स्याद्वाद महाविद्यालय से ''शास्त्री'' की परीक्षा पास कर आप पं. भूरामल जी नाम से विख्यात हुए । वाराणसी में ही आपने जैनाचार्यों द्वारा लिखित न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त एवं अध्यात्म विषयों के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया ।

बनारस से लौट कर आपने अपने ही ग्रामीण विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, लेकिन साथ में, निरन्तर साहित्य साधना एवं साहित्य लेखन के कार्य में भी अग्रसर होते गये। आपकी लेखनी से एक से एक सुन्दर काव्यकृतियाँ जन्म लेती रही । आपकी तरुणाई विद्वता और आजीविकोपार्जन की क्षमता देखकर आपके विवाह के लिए अनेकों प्रस्ताव आये, सगे सम्बन्धियों ने भी आग्रह किया। लेकिन आपने वाराणसी में अध्ययन करते हुए ही संकल्प ले लिया था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर माँ सरस्वती और जिनवाणी की सेवा में, अध्ययन-अध्यापन तथा साहित्य सृजन में ही अपने आपको समर्पित कर दिया । इस तरह जीवन के ५० वर्ष साहित्य साधना, लेखन, मनन एवं अध्ययन में व्यतीत कर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया । इसी अवधि में आपने दयोदय, भद्रोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय आदि साहित्यिक रचनायें संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा के महाकाव्यों की रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले मूर्धन्य विद्वानों में आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । काशी के दिग्गज विद्वानों की प्रतिक्रिया थी ''इसकाल में भी कालीदास और माघकवि की टक्कर लेने वाले विद्वान हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती हैं ।'' इस तरह पूर्ण उदासीनता के साथ, जिनवाणी माँ की अविरत सेवा में आपने गृहस्थाश्रम में ही जीवन के ५० वर्ष पूर्ण किये । जैन सिद्धान्त के हृदय को आत्मसात

करने हेतु आपने सिद्धान्त ग्रन्थों श्री धवल, महाधवल जयधवल महाबन्ध आदि ग्रन्थों का विधिवत् स्वाध्याय किया । "ज्ञान भारं क्रिया बिना" क्रिया के बिना ज्ञान भार- स्वरूप है - इस मंत्र को जीवन में उतारने हेतु आप त्याग मार्ग पर प्रवृत्त हुए ।

सर्वप्रथम ५२ वर्ष की आयु में सन् १९४७ में आपने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये । ५४ वर्ष की आयु में आपने पूर्णरूपेण गृहत्याग कर आत्मकल्याण हेतु जैन सिद्धान्त के गहन अध्ययन में लग गये। सन् १९५५ में ६० वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से ही रेनवाल में क्षुल्लक दीक्षा लेकर ज्ञानभूषण के नाम से विख्यात हुए । सन् १९५९ में ६२ वर्ष की आयु में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा अंगीकार कर १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी के नाम से विभूषित हुए । और आपकों आचार्य श्री का प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ । संघ में आपने उपाध्याय पद के कार्य को पूर्ण विद्वत्ता एवं सजगता के साथ सम्पन्न किया । रूढ़िवाद से कोसों दूर मुनि ज्ञानसागर जी ने मुनिपद की सरलता और गंभीरता को धारण कर मन, वचन और कायसे दिगम्बरत्व की साधना में लग गये। दिन रात आपका समय आगमानुकूल मुनिचर्या की साधना, ध्यान अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन में व्यतीत होता रहा । फिर राजस्थान प्रान्त में ही विहार करने निकल गये । उस समय आपके साथ मात्र दो-चार त्यागी व्रती थे, विशेष रूप से ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी व सुख सागरजी तथा एक-दो ब्रह्मचारी थे । मुनि श्री उच्च कोटि के शास्त्र-ज्ञाता, विद्वान एवं तात्विक वक्ता थे । पंथ वाद से दूर रहते हुए आपने सदा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी और एक सद्गृहस्थ का जीवन जीने का आह्वान किया।

विहार करते हुए आप मदनगंज-किशनगढ़, अजमेर तथा ब्यावर भी गये । ब्यावर में पंडित हीरा लालजी शास्त्री ने मुनि श्री को उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों एवं पुस्तकों को प्रकाशित कराने की बात कही, तब आपने कहा "जैन वाँगमय की रचना करने का काम मेरा है, प्रकाशन आदि का कार्य आप लोगों का है" ।

जब सन् १९६७ में आपका चातुर्मास मदनगंज किशनगढ़ में हो रहा था, तब जयपुर नगर के चूलगिरि क्षेत्र पर आचार्य देश भूषण जी महाराज का वर्षा योग चल रहा था । चूलगिरी का निर्माण कार्य भी आपकी देखरेख एवं संरक्षण में चल रहा था। उसी समय सदलगा ग्रामनिवासी, एक कन्नड़-भाषी नवयुवक आपके पास ज्ञानार्जन हेतु आया । आचार्य देशभूषण जी की

आँखों ने शायद उस नवयुवक की भावना को पढ़ लिया था, सो उन्होंने उस नवयुवक विद्याधर को आशीर्वाद प्रदान कर ज्ञानार्जन हेतु मुनिवर ज्ञानसागर जी के पास भेज दिया । जब मुनि श्री ने नौजवान विद्याधर में ज्ञानार्जन की एक तीव्र कसक एवं ललक देखी तो मुनि श्री ने पूछ ही लिया कि अगर विद्यार्जन के पश्चात छोडकर चले जावोगे तो मुनि तो का परिश्रम व्यर्थ जायेगा। नौजवान विद्याधर ने तुरन्त ही दृढ़ता के साथ आजीवन सवारी का त्याग कर दिया । इस त्याग भावना से मुनि ज्ञान सागरजी अत्यधिक प्रभावित हुए और एक टक-टकी लगाकर उस नौजवान की मनोहारी, गौरवर्ण तथा मधुर मुस्कान के पीछे छिपे हुए दृढ़-संकल्प को देखते ही रह गये ।

शिक्षण प्रारम्भ हुआ । योग्य गुरू के योग्य शिष्य विद्याधर ने ज्ञानार्जन में कोई कसर नहीं छोड़ी । इसी बीच उन्होंने अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत को भी धारण कर लिया । ब्रह्मचारी विद्याधर की साधना प्रतिमा, तत्परता तथा ज्ञान के क्षयोपशम को देखकर गुरू ज्ञानसागर जी इतने प्रभावित हुए कि, उनकी कड़ी परीक्षा लेने के बाद, उन्हें मुनिपद ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी । इस कार्य को सम्पन्न करने का सौभाग्य मिला अजमेर नगर को और सम्पूर्ण जैन समाज को । ३० जून १९६८ तदानुसार आषाढ़ शुक्ला पंचमी को ब्रह्मचारी विद्याधर की विशाल जन समुदाय के समक्ष जैनश्वरी दीक्षा प्रदान की गई और विद्याधर, मुनि विद्यासागर के नाम से सुशोभित हुए । उस वर्ष का चातुर्मास अजमेर में ही सम्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संघ विहार करता हुआ नसीराबाद पहुँचा। यहाँ आपने ७ फरवरी १९६९ तदानुसार मगसरबदी दूज को श्री लक्ष्मी नारायण जी को मुनि दीक्षा प्रदान कर मुनि १०८ श्री विवेकसागर नाम दिया इसी पुनीत अवसर पर समस्त उपस्थित जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया ।

आचार्य ज्ञानसागर जी की हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके शिष्य उनके सान्निध्य में अधिक से अधिक ज्ञार्नाजन कर ले । आचार्य श्री अपने ज्ञान के अथाह सागर को समाहित कर देना चाहते थे विद्या के सागर में और दोनों ही गुरू-शिष्य उतावले थे एक दूसरे में समाहित होकर ज्ञानामृत का निरन्तर पान करने और कराने में । आचार्य ज्ञानसागर जी सच्चे अर्थों में एक विद्वान-जौहरी और पारखी थे तथा बहुत दूर दृष्टि वाले थे । उनकी काया निरन्तर क्षीण होती जा रही थी । गुरू और शिष्य की जैन सिद्धान्त एवं वांगमय की आराधना, पठन, पाठन एवं तत्वचर्चा-परिचर्चा निरन्तर अबाधगति से चल रही थी ।

तीन वर्ष पश्चात १९७२ में आपके संघ का चातुर्मास पुनः नसीराबाद में हुआ। अपने आचार्य गुरू की गहन अस्वस्थ्यता में उनके परम सुयोग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी ने पूर्ण निष्ठा और निस्पृह भाव से इतनी सेवा की कि शायद कोई लखपती बाप का बेटा भी इतनी निष्ठा और तत्परता के साथ अपने पिता श्री की सेवा कर पाता । कानों सुनी बात तो एक बार झूंठी हो सकती है लेकिन आँखो देखी बात को तो शत प्रतिशत सत्य मान कर ऐसी उत्कृष्ट गुरू भक्ति के प्रति नतमस्तक होना ही पड़ता है।

चातुर्मास समाप्ति की ओर था । आचार्य श्री ज्ञानसागर जी शारीरिक रुप से काफी अस्वस्थ्य एवं क्षीण हो चुके थे । साइटिका का दर्द कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था दर्द की भयंकर पीड़ा के कारण आचार्य श्री चलने फिरने में असमर्थ होते जा रहे थे । १६-१७ मई १९७२ की बात है - आचार्य श्री ने अपने योग्यतम शिष्य मुनि विद्यासागर से कहा ''विद्यासागर! मेरा अन्त समीप है । मेरी समाधि कैसे सधेगी ?

इसी बीच एक महत्वपूर्ण घटना नसीराबाद प्रवास के समय घटित हो चुकी थी । आचार्य श्री के देह-त्याग से करीब एक माह पूर्व ही दक्षिण प्रान्तीय मुनि श्री पार्श्वसागर जी आचार्य श्री की निर्विकल्प समाधि में सहायक होने हेतु नसीराबाद पधार चुके थे । वे कई दिनों से आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की सेवा सुश्रुषा एवं वैय्यावृत्ति कर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते थे। नियति को कुछ और ही मंजूर था। १५ मई १९७२ को पार्श्वसागर महाराज को शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई और १६ मई को प्रात:काल करीब ७ बजकर ४५ मिनिट पर अरहन्त, सिद्ध का स्मरण करते हुए वे इस नश्वर देह का त्याग कर स्वर्गारोहण हो गये । अत: अब यह प्रश्न आचार्य ज्ञानसागर जी के सामने उपस्थित हुआ कि समाधि हेतु आचार्य पद का परित्याग तथा किसी अन्य आचार्य की सेवा में जाने का आगम में विधान है । आचार्य श्री के लिए इस भंयकर शारीरिक उत्पीडन की स्थिति में किसी अन्य आचार्य के पास जाकर समाधि लेना भी संभव नहीं था। आचार्य श्री ने अन्तत्तोगत्वा अपने शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी को कहा ''मेरा शरीर आयु कर्म के उदय से रत्नत्रय- आराधना में शनै: शनै: कृश हो रहा है। अत: मैं यह उचित समझता हूँ कि शेष जीवन काल में आचार्य पद का परित्याग कर इस पद पर अपने प्रथम एवं योग्यतम शिष्य को पदासीन कर दूं। मेरा विश्वास है कि आप श्री जिनशासन सम्वर्धन एवं श्रमण संस्कृति का संरक्षण करते हुए इस पदकी गरिमा को बनाये रखोगे तथा संघ का कुशलता पूर्वक संचालन करसमस्त समाज को सही दिशा प्रदान करोगे।'' जब मुनि श्री विद्यासागरजी ने इस महान भार को उठाने में, ज्ञान, अनुभव और उम्र से अपनी लघुता

प्रकट की तो आचार्य ज्ञान सागरजी ने कहा "तुम मेरी समाधि साथ दो, आचार्य पद स्वीकार करलो। फिर भी तुम्हें संकोच है तो गुरु दक्षिणा स्वरुप ही मेरे इस गुरुत्तर भार को धारण कर मेरी निर्विकल्प समाधि करादो- अन्य उपाय मेरे सामने नहीं है।"

मुनि श्री विद्यासागर जी काफी विचलित हो गये, काफी मंथन किया, विचार-विमर्श किया और अन्त में निर्णय लिया कि गुरु दक्षिणा तो गुरु को हर हालत में देनी ही होगी । और इस तरह उन्होंने अपनी मौन स्वीकृति गुरु चरणों से समर्पित कर दी ।

अपनी विशेष आभा के साथ २२ नवम्बर १९७२ तदानुसार मगसर बदी दूज का सूर्योदय हुआ। आज जिन शासन के अनुयायिओं को साक्षात् एक अनुपम एवं अद्भुत दृश्य देखने को मिला । कल तक जो श्री ज्ञान सागरजी महाराज संघ के गुरु थे, आचार्य थे, सर्वोपरि थे, आज वे ही साधु एवं मानव धर्म की पराकाष्ठा का एक उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करने जा रहे थे यह एक विस्मयकारी एवं रोमांचक दृश्य था, मुनि की संज्वलन कषाय की मन्दता का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण था । आगमानुसार आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने आचार्य पदत्याग की घोषणा की तथा अपने सर्वोत्तम योग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागरजी को समाज के समक्ष अपना गुरुत्तर भार एवं आचार्य पद देने की स्वीकृति मांगकर, उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया । जिस बडे पट्टे पर आज तक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी आसीन होते थे उससे वे नीचे उतर आये और मुनि श्री विद्यासागरजी को उस आसन पर पदासीन किया। जन-समुदाय की आँखे सुखानन्द के आँसुओं से तरल हो गई । जय घोष से आकाश और मंदिर का प्रागंण गूंज उठा। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुये पूज्य गुरुवर की निर्विकल्प समाधि के लिए आगमानुसार व्यवस्था की। गुरु ज्ञानसागरजी महाराज भी परम शान्त भाव से अपने शरीर के प्रति निर्ममत्व होकर रस त्याग की ओर अग्रसर होते गये।

आचार्य श्री विद्यासागरजी ने अपने गुरु की संलेखना पूर्वक समाधि कराने में कोई कसर नहीं छोडी । रात दिन जागकर एवं समयानुकूल सम्बोधन करते हुए आचार्य श्री ने मुनिवर की शांतिपूर्वक समाधि कराई । अन्त में समस्त आहार एवं जल का त्यागोपरान्त मिती जेष्ठ कृष्णा अमावस्या वि स. २०३० तदनानुसार शुक्रवार दिनांक १ जून १९७३ को दिन में १० बजकर ५० मिनिट पर गुरु ज्ञानसागर जी इस नश्वर शरीर का त्याग कर आत्मलीन हो गये । और दे गये समस्त समाज को एक ऐसा सन्देश कि अगर सुख,शांति

और निर्विकल्प समाधि चाहते हो तो कषायों का शमन कर रत्नत्रय मार्ग पर आरुढ़ हो जाओ, तभी कल्याण संभव है ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि आचार्य ज्ञानसागरजी का विशाल कृतित्व और व्यक्तित्व इस भारत भूमि के लिए सरस्वती के वरद पुत्रता की उपलब्धि कराती है। इनके इस महान साहित्य सृजनता से अनेकानेक ज्ञान पिपासुओं ने इनके महाकाव्यों परशोध कर डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर अपने आपको गौरवान्वित किया है। आचार्य श्री के साहित्य की सुरभि वर्तमान में सारे भारत में इस तरह फैल कर विद्वानों को आकर्षित करने लगी है कि समस्त भारतवर्षीय जैन अजैन विद्वानों का ध्यान उनके महाकाव्यों की ओर गया है। परिणामत: आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की ही संघ परम्परा के प्रथम आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवचन प्रवक्ता, मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में प्रथम बार "आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर ९-१०-११ जून १९९४ को महान अतिशय एवं चमत्कारिक क्षेत्र, सांगानेर (जयपुर) में संगोष्ठी आयोजित करके आचार्य ज्ञानसागरजी के कृतित्व को सरस्वती की महानतम साधना के रूप में अंकित किया था, उसे अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त समाज के समक्ष उजागर कर विद्वानों ने भारतवर्ष के सरस्वती पुत्र का अभिनन्दन किया है। इस संगोष्ठी में आचार्य श्री के साहित्य-मंथन से जो नवनीत प्राप्त हुवा, उस नवनीत की स्निगधता से सम्पूर्ण विद्वत्त मण्डल इतना आनन्दित हुआ कि पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी के सामने अपनी अतरंग भावना व्यक्त की, कि- पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज के एक एक महाकाव्य पर एक एक संगोष्ठी होना चाहिए, क्योंकि एक एक काव्य में इतने रहस्मय विषय भरे हुए हैं कि उनके समस्त साहित्य पर एक संगोष्ठी करके भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता । विद्वानों की यह भावना तथा साथ में पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के दिल में पहले से ही गुरु नाम गुरु के प्रति,स्वभावत: कृतित्व और व्यक्तित्व के प्रति प्रभावना बैठी हुई थी, परिणामस्वरुप सहर्ष ही विद्वानों और मुनि श्री के बीच परामर्श एवं विचार विमर्श हुआ और यह निर्णय हुआ कि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी के पृथक पृथक महाकाव्य पर पृथक पृथक रुप से अखिल भारतवर्षीय संगोष्ठी आयोजित की जावे । उसी समय विद्वानों ने मुनि श्री सुधासागर जी के सान्निध्य मे बैठकर यह भी निर्णय लिया कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज़ का समस्त साहित्य पुन: प्रकाशित कराकर विद्वानों को, पुस्तकालयों और विभिन्न स्थानों के मंदिरों को उपलब्ध कराया जावे।

साथ में यह भी निर्णय लिया गया कि द्वितीय संगोष्ठी में वीरोदय महाकाव्य को विषय बनाया जावे । इस महाकाव्य में से लगभग ५० विषय

पृथक पृथक रुप से छाँटे गये, जो पृथक पृथक मूर्धन्य विद्वानों के लिए आलेखित करने हेतु प्रेषित किये गये है। आशा है कि निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मुनि श्री के ही सान्निध्य में द्वितीय अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त संगोष्ठी वीरोदय महाकाव्य पर माह अक्टूबर ९४ मे अजमेर में सम्पन्न होने जा रही है जिसमें पूज्य मुनि श्री का संरक्षण, नेतृत्व एवं मार्गदर्शन सभी विद्वानों को निश्चित रुप से मिलेगा ।

हमारे अजमेर समाज का भी परम सौभाग्य है कि यह नगर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज की साधना स्थली एवं उनके परम सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की दीक्षा स्थली रही है । अजमेर के सातिशय पुण्य के उदय के कारण हमारे आराध्य पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने अपने परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवक्ता, तीर्थोद्धारक, युवा मनिषी, पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गंभीर सागरजी एवं पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री धैर्य सागर जी महाराज को, हम लोगों की भक्ति भावना एवं उत्साह को देखते हुए इस संघ को अजमेर चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान कर हम सबको उपकृत किया है ।

परम पूज्य मुनिराज श्री सुधासागरजी महाराज का प्रवास अजमेर समाज के लिए एक वरदान सिद्ध हो रहा है । आजतक के पिछले तीस वर्षों के इतिहास में धर्मप्रेमी सज्जनों व महिलाओं का इतना जमघट, इतना समुदाय देखने को नहीं मिला जो एक मुनि श्री के प्रवचनों को सुनने के लिए समय से पूर्व ही आकर अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं । सोनी जी की नसियाँ मे प्रवचन सुनने वाले जैन-अजैन समुदाय की इतनी भीड़ आती हैं कि तीन-तीन चार-चार स्थानों पर "क्लोज-सर्किट टी.वी." लगाने पड़ रहे हैं। श्रावक संस्कार शिविर जो पर्यूषण पर्व में आयोजित होने जा रहा है। अपने आपकी एक एतिहासिक विशिष्ठता है । अजमेर समाज के लिए यह प्रथम सौभाग्यशाली एवं सुनहरा अवसर होगा जब यहाँ के बाल-आबाल अपने आपको आगमानुसार संस्कारित करेंगे ।

महाराज श्री के व्यक्तित्व का एवं प्रभावपूर्ण उद्बोधन का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि दान दातार और धर्मप्रेमी निष्ठावान व्यक्ति आगे बढ़कर महाराज श्री के सानिध्य में होने वाले कार्यक्रमों को मूर्त रुप देना चाहते हैं । अक्टूबर माह के मध्य अखिल भारतवर्षीय विद्वत-संगोष्ठी का आयोजन भी एक विशिष्ठ कार्यक्रम है जिसमें पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के द्वारा रचित वीरोदय महाकाव्य के विभिन्न विषयों पर ख्याति प्राप्त विद्वान अपने आलेख का वाचन करेंगे। काश यदि पूज्य मुनिवर सुधासागरजी महाराज

का संसघ यहाँ अजमेर में पर्दापण न हुआ होता तो हमारा दुर्भाग्य किस सीमा तक होता, विचारणीय है ।

पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों का हमारे दिल और दिमाग पर इतना प्रभाव हुआ कि सम्पूर्ण दिगम्बर समाज अपने वर्ग विशेष के भेदभावों को भुलाकर जैन शासन के एक झंडे के नीचे आ गये । यहीं नहीं हमारी दिगम्बर जैन समिति ने समाज की ओर से पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त साहित्य का पुनः प्रकाशन कराने का संकल्प मुनिश्री के सामने व्यक्त किया । मुनि श्री का आशीर्वाद मिलते ही समाज के दानवीर लोग एक एक पुस्तक को व्यक्तिगत धनराशि से प्रकाशित कराने के लिए आगे आये ताकि वे अपने राजस्थान में ही जन्मे सरस्वती-पुत्र एवं अपने परमेष्ठी के प्रति पूजांजली व्यक्त कर अपने जीवन में सातिशय पुण्य प्राप्त कर तथा देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अपनी आस्था को बलवती कर अपना अपना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के साहित्य की आपूर्ति को समस्या की पूर्ती इस चातुर्मास में अजमेर समाज ने सम्पन्न की है उसके पीछे एक ही भावना है कि अखिल भारतवर्षीय जन मानस एवं विद्वत जन इस साहित्य का अध्ययन, अध्यापन कर सृष्टी की तात्विक गवेषणा एवं साहित्यक छटा से अपने जीवन को सुरभित करते हुए कृत कृत्य कर सकेंगे।

इसी चातुर्मास के मध्य अनेकानेक सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव भी आयेगें जिस पर समाज को पूज्य मुनि श्री से सारगर्भित प्रवचन सुनने का मौका मिलेगा । आशा है इस वर्ष का भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं पिच्छिका परिवर्तन कार्यक्रम अपने आप में अनूठा होगा । जो शायद पूर्व की कितनी ही परम्पराओं से हटकर होगा ।

अन्त में श्रमण संस्कृति के महान साधक महान तपस्वी, ज्ञानमूर्ति, चारित्र विभूषण, बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत चरणों में तथा उनके परम सुयोग्यतम शिष्य चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज और इसी कड़ी में पूज्य मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लकगण श्री गम्भीर सागर जी एवं श्री धैर्य सागरजी महाराज के पुनीत चरणों में नत मस्तक होता हुआ शत्-शत् वंदन, शत्-शत् अभिनंदन करता हुआ अपनी विनीत विनयांजली समर्पित करता हूँ ।

इन उपरोक्त भावनाओं के साथ प्राणी मात्र के लिए तत्वगवेषणा हेतु यह ग्रन्थ समाज के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं । यह **दयोदय** पुस्तक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने लिखी था ।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण श्री प्रकाशचन्द्र जैन से प्रकाशित हुआ था । उसी प्रकाशन को पुन: यथावत प्रकाशित करके इस ग्रन्थ की आपूर्ती की पूर्ती की जा रही है । अत: पूर्व प्रकाशक का दिगम्बर जैन समिति, अजमेर आभार व्यक्त करती है । एवं इस द्वितीय संस्करण में दातारों का एवं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष से जिन महानुभावों ने सहयोग दिया है, उनका भी आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थ की महिमा प्रथम संस्करण से प्रकाशकीय एवं प्रस्तावना में अतिरिक्त है । जो इस प्रकाशन में भी यथावत संलग्न हैं ।

दिनाङ्क : 13-14-15 अक्टूबर 1994
वीरोदय महाकाव्य पर अ भा. विद्वत संगोष्ठी

विनीत
श्री दिगम्बर जैन समिति
एवं सकल दिगम्बर जैन समाज
अजमेर (राज)

परम पूज्य
आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज
सांख्यिकी – परिचय

प्रस्तुति - कमल कुमार जैन

पारिवारिक परिचय :

जन्म स्थान - राणोली ग्राम (जिला सीकर) राजस्थान
जन्म काल - सन् १८९१
पिता का नाम - श्री चतुर्भुज जी,
माता का नाम - श्रीमती घृतवरी देवी
गोत्र - छाबड़ा (खंडेलवाल जैन)
बाल्यकाल का नाम - भूरामल जी
भ्रात परिचय - पाँच भाई (छगनलाल/भूरामल/गंगाप्रसाद/गौरीलाल/एवं देवीदत्त)
पिता की मृत्यु - सन १९०२ में
शिक्षा - प्रारम्भिक शिक्षा गांव के विद्यालय में एवं शास्त्रि स्तर की शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस (उ प्र) से प्राप्त की ।

साहित्यिक परिचय :

संस्कृत भाषा में

* दयोदय / जयोदय / वीरोदय / (महाकाव्य)
* सुदर्शनयोदय / भद्रोदय / मुनि मनोरंजनाशीति - (चरित्र काव्य)
* सम्यकत्व सार शतक (जैन सिद्धान्त)
* प्रवचन सार प्रतिरुपक (धर्म शास्त्र)

हिन्दी भाषा में

* ऋषभावतार / भाग्योदय / विवेकोदय / गुण सुन्दर वृत्तान्त (चरित्र काव्य)
* कर्तव्य पथ प्रदर्शन / सचित्तविवेचन / तत्वार्थसूत्र टीका / मानव धर्म (धर्मशास्त्र)
* देवागम स्तोत्र / नियमसार / अष्टपाहुड़ (पद्यानुवाद)
* स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म और जैन विवाह विधि

चारित्र पथ परिचय :

* सन १९४७ (वि सं. २००४) में व्रतरुप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की ।
* सन १९५५ (वि. सं. २०१२) में क्षुल्लक दीक्षा धारण की ।
* सन १९५७ (वि. सं. २०१४) में ऐलक दीक्षा धारण की ।
* सन १९५९ (वि. सं. २०१६) में आचार्य १०८ श्री शिवसागर महाराज से उनके प्रथम शिष्य के रुप में मुनि दीक्षा धारण की । स्थान खानिया (जयपुर) राज । आपका नाम मुनि ज्ञानसागर रखा गया ।
* ३० जून सन् १९६८ (आषाड़ शुक्ला ५ सं. २०२५) को ब्रह्मचारी विद्याधर जी को मुनि पद की दीक्षा दी जो वर्तमान में आचार्य श्रेष्ठ विद्यासागर जो कि रुप में विराजित है ।
* ७ फरवरी सन् १९६९ (फागुन वदी ५ सं. २०२५) को नसीराबाद (राजस्थान) में जैन समाज ने आपको आचार्य पद से अलंकृत किया एवं इस तिथि को विवेकसागर जी को मुनिपद की दीक्षा दी ।
* संवत् २०२६ को ब्रह्मचारी जमनालाल श्री गंगवाल खाचरियावास (जिला-सीकर) रा. को क्षुल्लक दीक्षा दी और क्षुल्लक विनयसागर नाम रखा । बाद में क्षुल्लक विनयसागर जी ने मुनिश्री विवेकसागर जी से मुनि दीक्षा ली और मुनि विनयसागर कहलाये ।
* संवत् २०२६ मह्यं ब्रह्म. पन्नालाल जी को केशरगंज अजमेर (राज.) में मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी ।
* संवत् २०२६ में बनवारी लाल जी मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी।
* २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद में ब्रह्म स्वरुपानन्दजी को क्षुल्लक दीक्षा दी, जो कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के समाधिस्थ पश्चात् सन् १९७६ (कुण्डलपुर) तक आचार्य विद्यासागर महाराज के संघ में रहे ।
* २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद जैन समाज ने आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया ।
* क्षुल्लक आदिसागर जी, क्षुल्लक शीतलसागर जी (आचार्य महावीर कीर्ति जो के शिष्य भी आपके साथ रहते थे ।
* पांडित्य पूर्ण, जिन आगम के अतिश्रेष्ठ ज्ञाता आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेकों श्रमण/आर्यिकाएँ/ऐलक/क्षुल्लक/ब्रह्मचारी/श्रावकों को जैन आगम के दर्शन का ज्ञान दिया।

आचार्य श्री वीर सागर जी/आचार्य श्री शिवसागर जी/आचार्य श्री धर्मसागर जी/आचार्य श्री अजित सागर जी / एवं वर्तमान श्रेष्ठ आचार्य विद्यासागर जी इसके अनुपम उदाहरण है ।

आचार्य श्री के चातुर्मास परिचय :

* संवत् २०१६ - अजमेर सं. २०१७ - लाडनू; सं. २०१८ - सीकर (तीनों चातुर्मास आचार्य शिवसागर जी के साथ किये)
* संवत २०१९ - सीकर, २०२० - हिंगोनिया (फुलेरा); सं. २०२१- मदनगंज - किशनगढ़ सं २०२२ - अजमेर, सं २०२३ - अजमेर, सं २०२४ - मदनगंज-किशनगढ़ सं २०२५ - अजमेर (सोनी जी की नसियाँ), सं २०२६ - अजमेर (केसरगंज); सं. २०२७- किशनगढ़ रैनवाल, सं २०२८ - मदनगंज-किशनगढ़ सं. २०२९- नसीराबाद।

विहार स्थल परिचय :

* सं २०१२ से सं २०१६ तक क्षुल्लक/ ऐलक अवस्था में - रोहतक/हासी/हिसार/गुड़गाँवा/रिवाड़ी/एवं जयपुर ।
* सं. २०१६ से सं २०२९ तक मुनि/आचार्य अवस्था में - अजमेर/ लाडनू/सीकर/हिंगोनिया/फुलेरा/मदनगंज-किशनगढ़/नसीराबाद/बीर/ रुपनगढ़/मरवा/छोटा नरेना/साली/साकुन/हरसोली/छप्या/दूदू/मोजमाबाद/ चोरु/झाग/सांवरदा/खंडेला/हयोढ़ी/कोठी/मंडा-भीमसींह/भींडा/ किशनगढ़-रैनवाल/कांस/श्यामगढ़/मारोठ/सुरेरा/दांता/कुली/ खाचरियाबाद एवं नसीराबाद ।

अंतिम परिचय

* आचार्य पद त्याग एवं संल्लेखना व्रत ग्रहण :
  मंगसर वदी २ सं. २०२९ (२२ नवम्बर सन् १९७२)
* समाधिस्थ :
  ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या सं २०३० (शुक्रवार १ जून सन् १९७३)
* समाधिस्थ समय: पूर्वान्ह १० बजकर ५० मिनिट ।
* सल्लेखना अवधि : मास १३ दिन (मिति अनुसार)
  ६ मास १० दिन (दिनांक अनुसार)

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिश्रेष्ठ अनुयायी के चरणों में श्रद्धेव नमन्। शत् शत् नमन ।

प्रस्तावना

संसार में जितने भी धर्म प्रचलित हैं, उन सबने अहिंसा को धर्म माना है । यह बात दूसरी है कि किसी की अहिंसा मनुष्य तक ही सीमित रही हो, किसी की अहिंसा पशु-पक्षियों तक, और किसी की अहिंसा प्राणिमात्र तक । इन तीन वर्गों में से जैन धर्म की अहिंसा तीसरी सर्वोच्च कोटि की है, जिसे कि संसार एवं घर-बार का त्यागी साधु ही पाल सकता है । दूसरे प्रकार की अहिंसा मध्यम कोटि की है, जिसे जैन या अजैन कोई भी विचार-शील गृहस्थ भली भांति पालन कर सकता है, या पालन करता है । पहिले प्रकार की अहिंसा के दर्शन प्रायः सभी भारतीय और विदेशी दर्शनों में होते हैं, यह तीसरी कोटि की अहिंसा है ।

इस विवेचन से कम से कम इतना तो निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि अहिंसा सामान्य को धर्म मानने में किसी को भी आपत्ति या विवाद नहीं है । रह जाती है उसके पालने की बात, सो जैन धर्म कहता है कि तुमसे जितनी भी संभव हो, उतनी अहिंसा का ही पालन करो ।

जो पुस्तक पाठकों के हाथ में है, उसमें एक कथानक के द्वारा यही बतलाया गया है कि यदि मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था और आजीविका आदि का विचार कर थोड़ी से भी थोड़ी अहिंसा का पालन करे, तो एक दिन वह भी पतित अवस्था से उठकर उच्च एवं पवित्र दशा को प्राप्त कर सकता है । यही कारण है कि 'अहिंसा परमो धर्मः कह कर जैन धर्म ने अहिंसा धर्म की पवित्रता और महत्ता का महान् उद्घोष किया है और अहिंसा के अति स्थूल रूप से लेकर उसके सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म स्वरूप का विस्तार के साथ विवेचन कर उसके पालन की संभाव्यता प्रकट की है ।

प्रस्तुत पुस्तक में जो कथानक दिया गया है, वह एक ऐसे व्यक्ति का है, जिसकी कि आजीविका ही हिंसामय थी और जो स्वयं मांस भोजी था । किन्तु उसने केवल इतना ही व्रत (नियम) लिया कि जाल में पहिली बार जो जीव आयेगा, उसकी हिंसा नहीं करूंगा । उसने अपने इस नियम

का मन-वचन-काय से केवल एक ही दिन पालन कर पाया कि वह मृत्यु को प्राप्त हो गया और उस अति लघु अहिंसा व्रत के प्रभाव से अगले ही जन्म में एक उच्च कुलीन सेठ के घर पैदा हुआ और अन्त में उसने आत्म-कल्याण करके सांसारिक सर्वोच्च अभ्युदय सुख को प्राप्त किया और अगले ही भव में वह कर्म-बन्धन से मुक्त होकर अक्षय अनन्त मुक्ति के सुख का भागी बन जायगा।

卐 दयोदय का कथानक 卐

प्रस्तुत ग्रन्थ में जिस प्रकार से मृगसेन धीवर की कथा दी गई है ठीक उसी प्रकार से हरिषेणाचार्य-रचित वृहत्कथाकोष में भी दी गई है । जब मैंने दोनों कथाओं का मिलान किया, तो दोनों के कथानकों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पाया । हरिषेण ने अपने कथाकोष की रचना वि. सं ९८९ और शक सं ८५३ में की है । मृगसेन धीवर की कथा हरिषेण कथाकोष के सिवाय यशस्तिलकचम्पू में भी पाई जाती है जिसका रचनाकाल शक सं. ८८१ है । अर्थात् हरिषेण कथाकोष के २८ वर्ष पीछे यशस्तिलकचम्पू रचा गया है, फिर भी दोनों के कथानकों में जो नाम आदि की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है, उससे ज्ञात होता है कि दोनों को यह कथानक अपने-अपने रूप में ही पूर्व परम्परा से प्राप्त हुआ था । मृगसेन की कथा आचार्य सोमदेव कृत यशस्तिलक चम्पू के सिवाय ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत आराधना कथाकोष में भी पाई जाती है । इन दोनों ग्रन्थों में कथानक बिल्कुल एकसा है और आराधना कथाकोष के अन्त में कथानक का उपसंहारात्मक 'अन्य ग्रन्थे' कहकर जो 'पञ्चकृत्व: किलैकस्य' इत्यादि श्लोक दिया है, वह यशस्तिलक का ही है । जो कि उसके उपासकाध्ययन प्रकरण के छब्बीसवें कल्प के अन्त में पाया जाता है । अत: आराधना कथाकोष के रचयिता सोमदेव से बहुत पीछे हुए हैं, अत: यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि उन्होंने मृगसेन धीवर की कथावस्तु यशस्तिलक से ली है ।

दयोदय के मूल कथानक का रूप तो उक्त दोनों ग्रन्थों के समान ही है पर इसमें कथानक संक्षिप्त है और इसीलिए कथा वस्तु के कुछ अंश की इसमें चर्चा नहीं की गई है। कथानक के मुख्य पात्रों के नामों में भी

कुछ अन्तर है । दयोदय के सोमदत्त का नाम उक्त दोनों ग्रन्थों में धनकीर्ति दिया गया है, इसी प्रकार सोमदत्त की स्त्री विषा के स्थान पर श्रीमती नाम पाया जाता है । उक्त दोनों ग्रन्थों में बसन्त सेना वेश्या के द्वारा सोमदत्त या धनकीर्ति के गले में बन्धे पत्र को खोलकर पूर्व लिखित सन्दर्भ के स्थान पर उसे मिटाकर नया ही सन्दर्भ लिखा गया है ।

दयोदय के कथानक का सार इस प्रकार है - उज्जैन में एक मृगसेन धीवर रहता था । एक दिन वह अपना जाल लेकर मछलियों को पकड़ने के लिए चला । मार्ग में अवन्तीपार्श्वनाथ के मन्दिर पर उसने लोगों की भीड़ देखी । कौतूहल वश वह भी वहां पहुंचा और उसने देखा कि एक दिगम्बर मुनि अहिंसा धर्म का उपदेश दे रहे हैं। और अनेक लोग अहिंसाव्रत को स्वीकार कर हिंसा का त्याग कर रहे हैं । उसने भी सोचा कि हिंसा करना पाप है, पर मेरी तो जीविका ही हिंसामय है, यदि मैं हिंसा का त्याग कर दूं तो मेरी और मेरे घर वालों की गुजर कैसे होगी ? मनमें बहुत देर तक इसी उधेड़-बुन में लगा रहा कि मैं क्या करूं और कौन सा व्रत लूं। अंत में साहस करके उसने मुनिराज को प्रणाम किया और कहा कि भगवन्, मुझ पापी को भी कोई व्रत देकर अनुगृहीत करें। मुनिराज ने उसकी सर्व परिस्थिति का विचार कर उससे कहा- यद्यपि तेरी जीविका ही पापमय है, तथापि तू इतना तो त्याग कर ही सकता है कि तेरे जाल में सबसे पहले जो जीव आवे, उसे नहीं मारकर वापिस ही जीवित जल में छोड़ दे । उसने इसे स्वीकार कर लिया। यशस्तिलक और आराधना कथाकोश में इतना और अधिक बतलाया गया है कि मुनिराज ने उससे इतना और कहा कि यह भी नियम ले-कि मैं अन्य के द्वारा मारे हुए जीव का मांस नहीं खाऊंगा और सोते तथा संकट के समय पंचनमस्कार मन्त्र का स्मरण करूंगा। ऐसा कहकर उसे मंत्र भी बतला दिया । वह धीवर व्रत लेकर सिप्रा नदी पर पहुंचा और जाल को पानी में डाला । पहली ही वार में एक बड़ी मछली जाल में आई । उसने मुनिराज से ग्रहण किये हुए व्रत की याद करके उसे छोड़ना उचित समझा और यही पुन: जाल में आकर न मारी जाय इस विचार से कपड़े की एक धज्जी उसके गले में बांध दी । इसके पश्चात् उसने चार बार और जाल को पानी में मछलियां पकड़ने के लिए फेंका, परन्तु हर बार

वही पहले वाली ही मछली जाल में आती रही और उसे चिह्न युक्त देखकर हर बार वह उसे छोड़ता गया । इतने में शाम हो गई और वह खाली हाथ ही घर लौटा । उसकी घंटा नाम की स्त्री बहुत देर से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । जब उसने अपने पति को खाली हाथ आते हुए देखा तो वह आग-बबूला हो गई और खाली हाथ आने का कारण पूंछा। मृगसेन धीवर ने दिन की सारी घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर वह और भी आपे से बाहिर हो गई और उसे घर में नहीं घुसने दिया और घर के किवाड़ लगा लिए। वह बाहिर एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गया । दिन भर का थका और भूखा प्यासा तो था ही, पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए ही उसे नींद आ गई । तभी वहीं किसी जगह छिपे हुए सांप ने आकर उसे डस लिया और वह मर कर उसी नगरी के धनपाल सेठ और धनश्री सेठानी के सोमदत्त नाम का पुत्र पैदा हो गया ।

इधर जब रात अधिक बीत गई और घंटा धीवरी का क्रोध कुछ शान्त हुआ, तो वह किवाड़ खोलकर उसे ढूंढने को निकली। थोड़ी देर तक ढूंढने के बाद मृगसेन को उसने उस वृक्ष के नीचे मरा हुआ पाया, तो वह छाती कूट-कूट कर रोने लगी और 'जो पति का व्रत' सो मेरा भी व्रत है, ऐसा कह कर वहीं उसके ऊपर पड़ गई । इतने में ही वही सांप फिर निकला और उसने घंटा धीवरी को भी डस लिया । वह मर कर उसी नगरी में गुणपाल सेठ के यहां गुणश्री नाम की सेठानी के विषा नाम की लड़की हुई और दोनों के पूर्व भव के संयोग से इस भव में दोनों का विवाह हो गया ।

उक्त स्थल पर यशस्तिलक और आराधना कथाकोष के कथानक में कुछ अन्तर है। जिनके अनुसार घंटा धीवरी सवेरे पति को ढूंढने निकली और पति को मरा देख कर उसकी चिता में गिर कर मरी है ।

दयोदय में मृगसेन धीवर का जो जीव मरकर सोमदत्त हुआ है उसके माता-पिता का कोई उल्लेख नहीं है, केवल इतना ही संकेत किया गया है कि उसके मां-बाप बचपन में ही मर गये थे । पर उक्त दोनों ग्रन्थों में बताया गया है कि वह मृगसेन धीवर मरकर गुणपाल सेठ की धनश्री सेठानी के गर्भ में आया । यहां पर भी कथानक में कुछ अन्तर है । वह यह कि

गुणपाल की सेठानी के उक्त मृगसेन का जीव गर्भ में आने से पूर्व ही एक सुबन्धुमती नाम की कन्या थी, जो कि अत्यन्त रूपवती थी । उस नगर के राजमन्त्री का पुत्र उससे विवाह करना चाहता था, पर उसके दुराचारी होने के कारण सेठ उसे अपनी लड़की नहीं देना चाहता था । जब मन्त्री- पुत्र ने राजा के द्वारा भी सेठ पर लड़की विवाह देने के लिए दबाव डलवाया तो सेठ ने नगर छोड़ कर बाहर चले जाने का विचार किया। पर स्त्री के गर्भिणी होने के कारण वह कुछ असमंजस में पड़ा । अन्त में अपने पड़ौसी सेठ श्रीदत्त के भरोसे पर अपनी गर्भिणी स्त्री को उसके घर छोड़ कर गुणपाल सेठ लड़की को लेकर उज्जैन से कोशाम्बी चला गया ।

इधर एक बार श्रीदत्त के पड़ौसी सेठ के यहां दो मुनिराज आहार को आये । उनसे यह जानकर कि उस सेठानी के गर्भ में जो बालक है, वह बहुत भाग्यशाली होगा और इस सेठ की तथा इस नगरी के राजा की पुत्री के साथ उसका विवाह होगा, वह श्रीदत्त सेठ ईर्ष्या से जल-भुन गया और उसने पुत्र के पैदा होते ही मार देने का संकल्प किया । जब पुत्र पैदा हुआ, तो प्रसव-वेदना से वह सेठानी बेहोश हो गई । तुरन्त ही श्रीदत्त ने घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियों से यह प्रकट करा दिया कि बालक मरा ही पैदा हुआ है और उसने उसे एक भंगी को धन का प्रलोभन देकर मार देने के लिए सौंप दिया । भंगी का हृदय बालक का रूप देख कर दहल गया और वह जंगल में किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर चला आया ।

दयोदय के कथानक के अनुसार जब उस बालक के मां-बाप मर गये, तो वह बेचारा इधर उधर की जूठन खा कर गुजर करने लगा। एक दिन जब वह सेठ गुणपाल के मकान के सामने पड़ी हुई जूठन को खा रहा था, तभी दो मुनिराज गोचरी से लौटते हुए उधर से निकले। उनमें से छोटे मुनि के मुख से निकल पड़ा कि बेचारा कितना दीन है कि जूठन खा रहा है । तब बड़े मुनि ने, जो कि अवधिज्ञानी थे- कहा कि आज अवश्य इसके पाप का उदय है, पर आगे इसका भाग्योदय होगा और यह एक दिन इसी सेठ की लड़की को विवाहेगा और सुखी जीवन बितायेगा । सेठ ने यह बात सुन ली और तभी से वह उसे मारने का षड्यन्त्र रचने लगा । आगे का कथानक दोनों ग्रन्थों में एकसा है । भेद इतना है दयोदय के अनुसार गुणपाल सेठ उसे मारने का उपक्रम करता है और यशस्तिलक के अनुसार इन्द्रदत्त सेठ उसे मारने का षड्यन्त्र रचता है ।

यशस्तिलक के अनुसार भाग्यवश श्रीदत्त का बहनोई इन्द्रदत्त जो व्यापार के लिए बाहिर गया हुआ था, वह घर लौट रहा था। मार्ग में गुवालों के लड़को से उसे पड़े हुए बालक का हाल मालूम हुआ। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः वह उसे वहां से उठा लाया और अपनी स्त्री को सौंप दिया और उसके गूढ़ गर्भ था यह कहकर उसका जन्मोत्सव मनाया । जब यह पता श्रीदत्त को चला, तो वह सारी बात की यथार्थता को भांप गया और कुछ समय बाद बहनोई के घर जाकर उसने कहा कि यह भानजा मुझे बहुत प्यारा है, अतः मैं इसे अपने घर ले जाता हूं, इसका पालन-पोषण मैं ही करूंगा, ऐसा कपटमय वचन कह कर उस बालक को अपने घर ले आया और उसके मारने की चिन्ता में रहने लगा । अवसर पाकर उसने एक चांडाल को बहुत सा धन देकर मार डालने के लिए फिर उस बालक को सौंप दिया । बालक की सुन्दरता देखकर उसका भी हृदय करुणा से भर आया और बालक को किसी जंगल में सोता हुआ छोड़कर चला आया ।

बालक के भाग्य से गोविन्द गुवाला अपनी गायें चराता हुआ उधर से जा निकला और बालक को उठाकर अपनी स्त्री को सौंप दिया। इसके भी कोई सन्तान नहीं थी, अतः वह बड़े प्रेम से उसे पालने लगी और यह बालक भी दोजके चांद के समान बढ़ने लगा । हरि षेणकथा कोष और दयोदय के अनुसार गोविन्द ने अपने इस पुत्र का नाम सोमदत्त रखा । किन्तु यशस्तिलक और आराधनाकथा कोष इन दोनों ग्रन्थों में उसका नाम धनकीर्ति बताया गया है । इससे आगे का कथानक इन दोनों ग्रन्थों में एकसा है, केवल इतना अन्तर है कि यहां पर गुणपाल सेठकी लड़की का नाम विषा बतलाया गया है और उन दोनों ग्रन्थों में श्रीमती । और उसे इन्द्रदत्त की पुत्री बतलाया गया है। हरिषेणक थाकोष के अनुसार उस बालक के माता-पिता अन्य ही थे जिनके कि नामों का उल्लेख नहीं किया गया है, पर यशस्तिलक और आराधना कथाकोष में गुणपाल और गुणश्री ये दोनों ही उस बालक के माता-पिता बतलाये गये हैं ।

एक बार वह सेठ किसी कार्य से गुवालों के गांव गया और वहां पर उस गोविन्द के पुत्र को देखकर उसे पहिचान गया । उसने गोविन्द से उसके बाबत परिचय प्राप्त किया । जब गोविन्द ने उससे सारी सच्ची घटना कह सुनाई, तो वह पुनः तीसरी बार भी उसके मारने के लिए तैयार हुआ

और गोविन्द से कहा - भाई, एक जरूरी काम आ गया है । घर पर एक पत्र भेजना है, सो अपने पुत्र को भेज दो। गोविन्द ने उसे स्वीकृति दे दी और वह सोमदत्त पत्र को अपने गले के हार में बांध कर उज्जैन को चल दिया । नगर के समीप पहुंचकर थकान दूर करने के लिए वह एक बगीचे के छायादार वृक्ष के नीचे लेट गया । थका होने के कारण उसे लेटते ही नींद आ गई । इतने में उस नगर की एक वेश्या फूल तोड़ने के लिए उस बगीचे में आई। उस सोते हुए व्यक्ति को देखते ही स्नेह उमड़ा और गले में बंधे पत्र को देखने से कौतूहल भी बढ़ा। जब पत्र को खोलकर पढ़ा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि उसी नगर के राजसेठ ने उसको मारने के लिए घर वालों को लिखा था ।

दयोदय के कथानक के अनुसार उसमें 'विष' देने के लिए लिखा था। पर उस वेश्या ने सोचा कि नगर सेठ ऐसा नहीं कर सकता। संभव है जल्दी में अपनी विषा नाम की लड़की को देने के लिए लिखते हुए 'विषा' के स्थान पर 'विष' लिखा गया हो। ऐसा विचार कर उसने अपने आंखों के काजल में सलाई भर 'विष' के स्थान पर 'विषा' कर दिया और पत्र को ज्यों का त्यों बांधकर वह अपने स्थान को चली गई ।

इधर जब उसकी नींद खुली तो वह शीघ्रता-पूर्वक उठा और नगर सेठ के घर जाकर उसने वह पत्र उसके लड़के को सौंप दिया। पुत्र ने अपनी माता से परामर्श करके अपनी बहिन की उसके साथ शादी कर दी । इस प्रकार वह तीसरी बार भी मारे जाने से बच गया ।

दयोदय में वेश्या का नाम वसन्त सेना दिया है, पर उक्त दोनों ग्रन्थों में अनङ्गसेना दिया है । तथा उस वेश्या ने पत्र की पहिली लिखावट मिटाकर जिसमें उसे मार देने को लिखा था - उसके स्थान पर नवीन पत्र लिखकर पुत्री का विवाह कर देने को लिखा है ।

जब सेठ को पता चला कि मेरे घर वालों ने तो उसे मारने के स्थान पर लड़की विवाह दी है, तो वह दौड़ा हुआ घर आया और घर वालों से सब हाल पूछा । जब उसके लड़के ने उसके हाथ का लिखा पत्र बताया, तो वह अपने लिखने की भूल देखकर चुपचाप रह गया और उसे पुनः मारने के लिए एक और षड्यन्त्र रचा । उसने अपने जमाई से कहा कि हमारे

घर में यह रिवाज चला आता है कि नव विवाहित लड़का पूजा-सामग्री लेकर नागमन्दिर जाकर पूजा करता है सो तुम भी जाकर वहां पूजन कर आओ। इधर तो जमाई को उसने नाग मन्दिर भेजने की व्यवस्था की और उधर एक चाण्डाल को बहुतसा धन देकर कह दिया कि आज नागमन्दिर में जो पूजन की सामग्री लेकर आवे उसे तुम तुरन्त मार देना । उक्त दोनो ग्रन्थों में नागमन्दिर के स्थान पर दुर्गा के मन्दिर में जाने का उल्लेख है । जब उस सेठ का जमाई पूजन-सामग्री लेकर मन्दिर में देने के लिए जा रहा था, तो रास्ते में उसका साला महाबल मिल गया । उसने अपने बहनोई को अपने स्थान पर गेंद खेलने के लिए कह कर वह स्वयं पूजन-सामग्री लेकर मन्दिर गया और वहां चाण्डाल के द्वारा मारा गया ।

सोमदत्त जब घर वापिस आया, तो सेठ ने पूछा कि क्या तुम पूजन-सामग्री देने को मन्दिर नहीं गये ? तो उसने महाबल के जाने की बात कही। इतने में ही लोगों के द्वारा महाबल के मारे जाने का समाचार सेठ को मिला और वह अपना माथा पीट कर रह गया । इस प्रकार सोमदत्त चौथी बार भी मारे जाने से बच गया ।

अन्त में निराश होकर उसने अपनी स्त्री से सारा हाल कहा कि इस सोमदत्त को मारे बिना मुझे चैन नहीं मिल सकती । आज तक इसके मारने के लिए जितने भी उपाय मैंने किये, सब व्यर्थ गये । यहां तक कि अपने प्यारे पुत्र से भी हाथ धोना पड़ा है अब तुम कोई ऐसा उपाय करो कि यह मारा ही जावे । स्त्री ने उसके मारने के लिए विष मिलाकर चार लड्डू बनाये और घर वालों के लिए दूसरा भोजन तैयार करने के लिए अपनी लड़की से कह कर वह बाहिर निबटने को चली गई । भाग्यवश वह सेठ रसोई घर में पहुंचा और पुत्री से बोला - रसोई तैयार होने में क्या देर है? मुझे तो जरूरी कार्य से जल्दी ही बाहिर जाना है । बेचारी भोली लड़की ने उन लड्डूओं में से दो लड्डू पिता को खाने के लिए दिये और कहा कि आप जब तक इन्हें खाइये तब तक और रसोई तैयार कर देती हूं । सेठ ने ज्योंही वे विष-मिले लड्डू खाये, त्यों ही उस का मरण हो गया। इतने में उसकी स्त्री भी बाहिर से आ गई और पति को मरा हुआ देखकर बहुत रोई धोई और अन्त में बचे हुए वे दोनों विष-मिले लड्डू खाकर वह भी मर गई । इस प्रकार पांचवीं बार भी वह सोमदत्त मारे जाने से बच गया ।

जब राजा ने यह सब समाचार सुने तो उसे सोमदत्त को देखने की उत्सुकता पैदा हुई और उसने उसे राज-दरबार में बुलाया । जब सोमदत्त वहां पहुँचा तो राजा ने उसके असाधारण रूप-सौन्दर्य को देख कर और उसे पुण्यशाली मानकर अपनी राजपुत्री भी उसे विवाह दी और आधा राज्य भी उसे दिया ।

इस प्रकार वह सोमदत्त अपनी दोनों स्त्रियों के साथ बहुत समय तक आनन्दपूर्वक सुख भोगता रहा । एक बार एक मुनिराज गोचरी के लिए नगर में पधारे । सोमदत्त ने उन्हें पडिगाहन कर भक्ति-पूर्वक आहार दिया। मुनिराज ने उसे और उसकी दोनों स्त्रियों को सम्बोधित कर धर्म का उपदेश दिया और मनुष्य-जन्म की महत्ता बतला कर उसके पूर्व भव भी बताये । उन्हें सुनकर सोमदत्त और उसकी दोनों स्त्रियों को बहुत वैराग्य हुआ और सोमदत्त ने मुनिदीक्षा और दोनों स्त्रियों ने आर्यिका की दीक्षा ले ली । सोमदत्त उग्र तपश्चरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ, जो वहां से आकर मनुष्य होकर उसी भव से मोक्ष जायेगा । दोनों स्त्रियों के साथ उस वेश्या ने भी दीक्षा ले ली थी । ये तीनों ही जीवन पर्यन्त विधि-पूर्वक धर्म का आराधन कर सन्यास से देह का त्याग कर यथायोग्य स्वर्गों में गई ।

दयोदय का सारा कथानक हरिषेण कथाकोष के आधार पर लिखा गया है । पर इन दोनों में भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि वह सोमदत्त पांच बार मरने से क्यों बचा और वह वेश्या भी अकस्मात् ही क्यों पत्र की भाषा बदलकर उसके बचाने में सहायक हुई । इन दोनों बातों का उत्तर हमें यशस्तिलकचम्पू और आराधना कथाकोष से मिलता है । वहां स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि मृगसेन धीवर ने यतः पांच बार जाल में आई हुई मछली को जीवन-दान देकर पानी में वापिस छोड़ा था, अतः पांचों ही बार उस सातिशय पुण्य के प्रताप से यहां पर भी वह मारे जाने से बच गया । तथा जिस मछली को उसने पांचों ही बार जीवन दान दिया था, वह मछली ही मरकर इस भव में वेश्या हुई । और इसी पूर्व भव के संयोग से वह इस जन्म में उस को बचाने का कारण बनी।

卐 दयोदयचम्पू की विशेषता 卐

यहां पर पाठकों को सहज में ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि जब मृगसेन धीवर की कथा अनेक ग्रन्थों में पहले से ही वर्णित है, तो फिर नवीन ग्रन्थ की रचना करने की क्या आवश्यकता थी। इस प्रश्न का उत्तर हमें प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन करने पर मिल जाता है। वह यह कि उक्त ग्रन्थों में यह कथानक केवल कथा रूप से ही वर्णन किया गया है पर प्रस्तुत दयोदय में मृगसेन धीवर और उस की घण्टा धीवरी के साथ व्रत-ग्रहण के प्रसंग को लेकर वार्तालाप में जो अहिंसा धर्म की महत्ता बतलाई गई है, साथ ही उसके प्रतिपादन करने वाले जैन तीर्थंकरों की प्राचीनता और प्रामाणिकता का चित्रण वेद, उपनिषद और भागवत, पुराण आदि के अनेकों उद्धारण दिये गये हैं, उनसे इसकी विशेषता सहज में ही ज्ञात हो जाती है। इसके अतिरिक्त बीच-बीच में अनेक नीति-वाक्यों को देकर कितनी ही उपकथाएं भी इसमें दी गई हैं, जिनसे कि प्रतिदिन व्यवहार में आने वाली कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातों की भी शिक्षा मिलती है । यही कारण है कि प्राचीन शास्त्रों में उक्त कथानक के होते हुए भी रचयिता को इसके एक नवीन ही रूप में रचने की भावना हृदय में जागृत हुई और उन्होंने इस रूप में रचकर अपनी भावना को प्रगट किया ।

संस्कृत साहित्य में जो रचना गद्य और पद्य इन दोनों में की जाती है, उसे चम्पू कहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना भी इन दोनों में की गई है और इसके पढ़ने से दया का भाव उदित होता है अतएव इसका 'दयोदयचम्पू' यह नाम सार्थक है ।

卐 ग्रन्थकर्त्ता का परिचय 卐

राजस्थान प्रदेश में जयपुर के समीप राणोली ग्राम है । वहां पर एक खण्डेलवाल जैन कुलोत्पन्न छाबड़ागोत्री सेठ सुखदेवजी रहते थे। उनके पुत्र का नाम श्री चतुर्भुज जी और स्त्री का नाम घृतवरी देवी था । ये दोनों गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए रहते थे । उनके पांच पुत्र हुए । जिनके नाम इस प्रकार हैं - १ छगनलाल, २ भूरामल, ३ गंगाप्रसाद, ४ गौरीलाल

और ५ देवीदत्त । इनके पिताजी का वि.सं. १९५९ में स्वर्गवास हो गया, तब सबसे बड़े भाई की आयु १२ वर्ष की थी और सबसे छोटे भाई का जन्म तो पिता जी की मृत्यु के पीछे हुआ था । पिताजी के असमय में स्वर्गवास हो जाने से घर के कारोबार की व्यवस्था बिगड़ गई और लेन-देन का धंधा बैठ गया । तब बड़े भाई छगनलालजी को आजीविका की खोज में घर से बाहिर निकलना पड़ा और वे घूमते हुए गया पहुँचे और एक जैन दुकानदार की दुकान पर नौकरी करने लगे । पिताजी की मृत्यु के समय दूसरे भाई और प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्त्ता भूरामल की आयु केवल १० वर्ष की थी और अपने गांव के स्कूल की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी । आगे की पढ़ाई का साधन न होने से एक वर्ष बाद अपने बड़े भाई के साथ आप भी गया चले गये और किसी जैनी सेठ की दुकान पर काम सीखने लगे ।

लगभग एक वर्ष दुकान पर काम सीखते हुआ, कि उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस के छात्र किसी समारोह में भाग लेने के लिए गया आये। उनको देखकर बालक भूरामल के भाव भी पढ़ने को बनारस जाने के हुए और उन्होंने यह बात अपने बड़े भाई से कही। वे घर की परिस्थितिवश अपने छोटे भाई भूरामल को बनारस भेजने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे, तब आपने पढ़ने के लिए अपनी दृढ़ता और तीव्र भावना प्रकट की और लगभग १५ वर्ष की उम्र में आप बनारस पढ़ने के लिए चले गये ।

जब आप स्याद्वाद महाविद्यालय में पढ़ते थे, तब वहां पर पं. वंशीधर जी, पं. गोविन्दरायजी, पं. तुलसीरामजी आदि भी पढ़ रहे थे। आप और सब कार्यों से परे रहकर एकाग्र हो विद्याध्ययन में संलग्न हो गये। जहां आपके सब साथी कलकत्ता आदि की परीक्षाएं देने को महत्त्व देते थे, वहां आपका विचार था कि परीक्षा देने से वास्तविक योग्यता प्राप्त नहीं होती, वह तो एक बहाना है । वास्तविक योग्यता तो ग्रन्थ को आद्योपान्त अध्ययन करके उसे हृदयंगम करने से प्राप्त होती है, अतएव आपने किसी भी परीक्षा को देना उचित नहीं समझा और रात-दिन ग्रन्थों का अध्ययन करने में ही लगे रहते थे । एक ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त होते ही तुरन्त उसके आगे के ग्रन्थ का पढ़ना और कण्ठस्थ करना प्रारम्भ कर देते थे, इस प्रकार बहुत

ही थोड़े समय में आपने शास्त्रीय परीक्षा तक के ग्रन्थों का अध्ययन पूरा कर लिया ।

जब आप बनारस में पढ़ रहे थे, तब प्रथम तो जैन व्याकरण साहित्य आदि के ग्रन्थ ही प्रकाशित नहीं हुए थे, दूसरे वे बनारस, कलकत्ता आदि के परीक्षालयों में नहीं रखे हुए थे, इसलिए उस समय विद्यालय के छात्र अधिकतर अजैन व्याकरण और साहित्य के ग्रन्थ ही पढ़कर परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया करते थे । आपको यह देखकर बड़ा दुःख होता था कि जब जैन आचार्यों ने व्याकरण, साहित्य आदि के एक से एक उत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया है, तब हमारे जैन छात्र उन्हें ही क्यों नहीं पढ़ते हैं ? पर परीक्षा पास करने का प्रलोभन उन्हें अजैन ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता था । तब आपने और आपके सदृश्य ही विचार रखने वाले कुछ अन्य लोगों ने जैन न्याय और व्याकरण के ग्रन्थ जो कि उस समय तक प्रकाशित हो गये थे- काशी विश्वविद्यालय और कलकत्ता के परीक्षालय के पाठयक्रम में रखवाये । पर उस समय तक जैन काव्य और साहित्य के ग्रन्थ एक तो बहुत कम यों ही थे, जो थे भी, उनमें से बहुत ही कम प्रकाश में आये थे । अतः पढ़ते समय ही आपके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अध्ययन समाप्ति के अनन्तर मैं इस कमी की पूर्ति करूंगा । यहां एक बात उल्लेखनीय है कि आपने बनारस में रहते हुए जैन न्याय, व्याकरण साहित्य के ही ग्रन्थों का अध्ययन किया । उस समय विद्यालय में जितने भी विद्वान् अध्यापक थे, वे सभी ब्राह्मण थे, और जैन ग्रन्थों को पढ़ाने में आना-कानी करते और पढ़ने वालों को हतोत्साहित भी करते थे। किन्तु आपके हृदय में जैन ग्रन्थों के पढ़ने और उनको प्रकाश में लाने की प्रबल इच्छी थी । अतएव जैसे भी जिस अध्यापक से संभव हुआ आपने जैन ग्रन्थों को ही पढ़ा ।

इस प्रसंग में एक बात और भी उल्लेखनीय है कि जब आप बनारस विद्यालय में पढ़ रहे थे, तब वहां पं. उमरावसिंहजी जो कि पीछे ब्रह्मचर्य प्रतिमा अंगीकार कर लेने पर ब्र. ज्ञानानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं- का जैन ग्रन्थों के पठन-पाठन के लिए बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा । वे स्वयं उस समय धर्मशास्त्र का अध्यापन कराते थे । यही कारण है कि पूर्व

के पं. भूरामलजी और आज के मुनि ज्ञानसागरजी ने अपनी रचनाओं में उनका गुरुरूप से स्मरण किया है ।

आप अध्ययन समाप्त कर अपने ग्राम राणोली वापिस आ गये अब आपके सामने कार्य क्षेत्र के चुनाव का प्रश्न आया । उस समय यद्यपि आपके घर की परिस्थिति ठीक नहीं थी और उस समय विद्वान् विद्यालयों से निकलते ही पाठशालाओं और विद्यालयों में वैतनिक सेवा स्वीकार कर रहे थे, किन्तु आपको यह नहीं जंचा और फलस्वरूप आपने गांव में रहकर दुकानदारी करते हुए स्थानीय जैन बालकों को पढ़ाने का कार्य निःस्वार्थ भाव से प्रारंभ किया और एक बहुत लम्बे समय तक आपने उसे जारी रखा ।

जब आप बनारस से पढ़कर लौटे तभी आपके बड़े भाई भी गया से घर आ गये और आप दोनों भाई दुकान खोलकर अपनी आजीविका चलाने लगे और अपने छोटे भाइयों की शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख में लग गये । इस समय आपकी युवावस्था, विद्वत्ता और गृह-संचालन आजीविकोपार्जन की योग्यता देखकर आपके विवाह के लिए अनेक सम्बन्ध आये, आप पर आपके भाइयों और रिश्तेदारों ने शादी कर लेने के लिए बहुत आग्रह किया, पर आप तो अध्ययन काल से ही अपने मन में यह संकल्प कर चुके थे कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जैन साहित्य के निर्माण और उसके प्रचार में अपना समय व्यतीत करूंगा । इसलिए विवाह करने से आपने एकदम इनकार कर दिया और दुकान के कार्य को भी गौण करके उसे बड़े और छोटे भाइयों पर ही छोड़कर पढ़ाने के अतिरिक्त शेष सर्व समय को साहित्य की साधना में ही लगाने लगे । फलस्वरूप आपने अनेक संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की रचना की, जिनकी कि तालिका इस प्रकार है-

(१) दयोदय - यह ग्रन्थ पाठकों के हाथ में है, इसमें अहिंसा धर्म का माहात्म्य बतलाया गया है ।

(२) भद्रोदय - इसमें असत्य बोलकर चोरी करने वाले सत्य घोष की कथा देकर असत्य-संभाषण और परधनापरहरण का बुरा फल बताकर सत्य वचन का सुफल बतलाया गया है ।

(३) सुदर्शनोदय - इसमें सुदर्शन सेठ की कथा देकर ब्रह्मचर्य या शील व्रत का माहात्म्य दिखाया गया है ।

(४) **जयोदय** - इसमें जयकुमार सुलोचना की कथा महाकाव्य के रूप में वर्णन कर अपरिग्रह व्रत का माहात्म्य दिखाया गया है।

(५) **वीरोदय** - महाकाव्य के रूप में श्री वीर भगवान् का चरित्र-चित्रण कर उनके अनुपम उपदेशों का वर्णन किया गया है ।

(६) **मुनि-मनोरंजन शतक** - इसमें १०० श्लोकों के द्वारा मुनियों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है ।

(७) **प्रवचनसाररर** - प्रतिरूपक - आ. कुन्दकुन्द के प्रवचनसार की गाथाओं का श्लोकों में छायानुवाद किया गया है ।

卐 हिन्दी रचनाएं 卐

१ **ऋषभावतार** - गीतिका, चौपाई आदि नाना छन्दों में भ. ऋषभदेव के चरित्र का चित्रण किया गया है ।

२ **गुणसुन्दर-वृत्तान्त** - यह एक रूपक कविता ग्रन्थ है । इसमें राजा श्रेणिक के समय में युवास्था में दीक्षित एक सेठ के पुत्र का सुन्दर वर्णन किया गया है ।

३ **भाग्योदय** - इसमें धन्य कुमार का चरित्र वर्णन किया गया है । यह मुद्रित हो चुका है ।

४ **जैन विवाह विधि** - इसमें हिन्दी भाषा में सरल ढंग से विवाह विधि दी गई है । यह प्रकाशित हो चुकी है ।

५ **सम्यक्त्वसार शतक** - इसमें १०० छन्दों के द्वारा सम्यक्त्व का वर्णन किया गया है । यह भी मुद्रित हो चुकी है ।

६ **तत्त्वार्थ सूत्र टीका** - यह टीका अपने ढंग की अनोखी है। इसमें प्रकरण वश अनेक नवीन विषयों की भी चर्चा की गई है। प्रस्तावना में कई है ।

७ **कर्त्तव्यपथ प्रदर्शन** - इसमें सर्व साधारण लोगों के दैनिक कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है । यह भी प्रकट हो चुका है ।

८ **विवेकोदय** - यह कुन्द कुन्दाचार्य के समयसार की गाथाओं का गीतिका छन्द में पद्यानुवाद है । यह भी प्रकट हो चुका है ।

९ **सचित्तविवेचन** – इसमें सचित्त और अचित्त वस्तुओं का आगम के आधार पर प्रामाणिक विवेचन किया गया है ।

१० **देवागमस्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद** – यह क्रमशः जैन गजट में प्रकाशित हुआ है ।

११ **नियमसार का पद्यानुवाद** – यह भी क्रमशः जैन गजट में प्रकाशित हुआ है ।

१२ **अष्टपाहुड का पद्यानुवाद** – यह श्रेयोमार्ग में क्रमशः प्रकाशित हुआ है।

१३ **मानव जीवन** – इसमें मनुष्य जीवन की महत्ता बताकर कर्त्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा की गई है ।

१४ **स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म** – यह पुस्तक भी छप चुकी है । इसमें अनेक प्रमाणों से सत्यार्थ जैन धर्म का निरूपण स्वामी कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के आधार पर बतलाया गया है ।

इस प्रकार अध्ययन-अध्यापन करते हुए और नये-नये ग्रन्थों की रचना करते हुए जब आपकी युवावस्था बीती तब आपके मन में चारित्र को धारण कर आत्मकल्याण की भावना जो अभी तक भीतर ही भीतर बढ़ रही थी उमड़ पड़ी और फलस्वरूप बाल-ब्रह्मचारी होते हुए भी व्रत रूप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा वि सं. २००४ में धारण कर ली । इस अवस्था में भी आप अपनी ज्ञानोपार्जन की साधना में बराबर लगे रहे और इस बीच प्रकाशित हुए सिद्धान्त ग्रन्थ श्रीधवल जयधवल, महाबन्ध का आपने विधिवत् स्वाध्याय किया । जब विरक्ति और बढ़ी तो आपने वि सं. २०१२ में क्षुल्लक दीक्षा ले ली । लगभग २-२॥ वर्ष तक और इसमें अभ्यस्त हो जाने पर आपकी विरक्ति और उदासीनता और भी बढ़ी और वि सं २०१६ में आपने आचार्य शिवसागरजी महाराज से खानियां (जयपुर) में मुनि दीक्षा ग्रहण की। तब से आप बराबर निर्दोष मुनि व्रत का पालन करते हुए निरन्तर शास्त्र अध्ययन-मनन और चिन्तन में लगे रहते हैं ।

अभी २॥ मास पूर्व विहार करते हुए आप ब्यावर संघसहित पधारे, तब आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । यद्यपि मैं आपको बहुत

पहिले से जानता था पर इधर मुनिरूप में भेंट करने का प्रथम ही अवसर था। एक दिन प्रसंगवश मैंने उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त की, तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि आपने संस्कृत भाषा में पांच काव्यग्रन्थों की रचना की है, वह भी प्रौढ़ प्राञ्जल और अनुप्रास, रस अलंकार आदि काव्यगत सभी विशेषताओं के साथ जैन धर्म के प्राणभूत अहिंसा, सत्य आदि मूलव्रतों एवं साम्यवाद, अनेकान्तवाद, कर्मवाद आदि आगमिक एवं दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए।

मेरी इच्छी है कि आपके जो अनेक ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं, वे शीघ्र प्रकाश में आवें जिससे कि सारा समाज उनसे लाभ उठा सके।

ऐ. पन्नालाल दि.	हीरालाल शास्त्री,
जैन सरस्वती भवन	सिद्धान्तालंकार, न्यायतीर्थ
ब्यावर - ३ ३.६६	

卐 श्रीदयोदयचम्पू 卐

श्रीपतिर्भगवान् जीयाद् बहुधान्यहितार्थिनाम् ।
भक्तानां मुद्गतत्वेन यद्भक्तिः सूपकारिणी ।।१।।

अर्थ - केवलज्ञानादिरुप अन्तरंग लक्ष्मी और समवशरणादि बहिरङ्ग लक्ष्मी के स्वामी श्री अरहन्त भगवान् जयवन्त बने रहें जिनकी भक्ति की अधिकता से परोपकार में तत्पर रहने वाले भक्त लोगों को प्रसन्नता देकर परमोपकार करने वाली होती है । जैसे कि मूंग की दाल बनाने वाली रसोइन, धान्य से निकले हुये चावलों के भातों को उपयोगी बना देती है ।

कर्तुं कुवलयानन्दं सम्बद्धुं च सुखंजनैः ।
चन्द्रप्रभः प्रभुः स्यान्नस्तमस्तोमप्रहाणये ।।२।।

अर्थ - जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रि विकासी कमलों को विकसित कर देता है,चकोर पक्षियों से सम्बन्ध रखता है, एवं अन्धेरे को हटा देता है, वैसे ही इस पृथ्वी मण्डल को प्रसन्न करने के लिये, लोगों को सुखी बनाने के लिये और हमारे अज्ञान को मिटाने के लिये श्री चन्द्रप्रभु भगवान् समर्थ हैं ।

श्रीमते वर्द्धमानाय नमोऽस्तु विशद्ध्वने ।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।।३।।

अर्थ - जिनके ज्ञान में यह तमाम दुनियां भी एक गोखुर के जितनी सी बड़ी दीख पड़ती है ऐसे सम्पूर्ण बातों के जानने वाले केवल ज्ञान के धारक श्रीमान् वर्द्धमान भगवान् के लिये हमारा नमस्कार हो ।

नमस्तस्यै सरस्वत्यै विमलज्ञानमूर्तये ।
यत्कृपाङ्कुरमास्वाद्यगावो जीवन्ति नः स्फुटम् ॥४॥

अर्थ - पवित्र ज्ञान ही है शरीर जिसका ऐसी श्री सरस्वती देवी को हमारा नमस्कार हो, जिसकी कि कृपा के अंकुर को आस्वादन करके हम लोगों की यह वाणी रुपी गाय निरन्तर जीवित है ।

यैः शास्त्राम्बुनिधेः पारं समुत्तर्तुं महात्मभिः ।
पोतायितमितस्तेभ्यः श्रीगुरुभ्यो नमो नमः ॥५॥

अर्थ - शास्त्र रुपी समुद्र के पार पहुंचने के लिये जो महानुभाव जहाज का काम करते हैं ऐसे गुरुओं के लिये बार बार नमस्कार हो।

श्रमणाः श्रमहन्तारः सत्त्वानां सन्ति साम्प्रतम् ।
येषां सदुक्तितो वीक्षे धीवरस्य दयोदयम् ॥६॥

अर्थ - मैं देखता हूं कि जिनके सदुपदेश से धीवर चाण्डाल सरीखों ने भी पुनीत अहिंसा धर्म को धारण करके अपना कल्याण किया है ऐसे प्राणी मात्र का भला करने वाले श्री श्रमण साधु आज भी इस धरातल पर विद्यमान हैं ।

परम्परागतं तस्यैकं वृत्तं मद्वचोधृतम् ।
तथास्तु प्रीतये नृणां नद्या नीरं घटे भृतम् ॥७॥

अर्थ - इसी का एक उदाहरण जो पूर्व परम्परा से सुना जा रहा है मैं मेरे वचनों में सत्पुरुषों को सुनाता हूं जिसे कि सज्जन लोग प्रेम से सुनेंगे । जैसे कि घड़े में भर कर लाये हुये नदी के जल को लोग खुशी से पीते हैं ।

सम्पल्लवैः समाराध्या प्रवृत्तालम्बना क्वचित् ।
वनितेव लतेवाथ मदुक्तिः प्रीतये सताम् ॥८॥

अर्थ - जिस प्रकार अच्छे पत्तों वाली और बीच बीच में फूलों वाली बेल अच्छी लगा करती है । अथवा जो धन सम्पत्ति वाले गृहस्थपन को लक्ष्य में रख कर स्वीकार की जाती है और कहीं भी अपना एक आश्रम बना कर रहती है ऐसी औरत भी अच्छी लगती है । वैसे ही यह मेरी निबन्ध-कला भी जो कि अच्छे वाक्यों द्वारा और साथ में कहीं-कहीं श्लोकों द्वारा भी बनाई गई है सत्पुरुषों को प्यारी लगनी चाहिये।

व्युत्पत्तयेऽस्तु विज्ञानां केषांचित्कौतुकाय च ।
अन्येषामनुसन्धान - धरे वासौ परीक्षितुम् ॥९॥

अर्थ - इस मेरी रचना को कुछ समझदार लोग तो पढ़ने की इच्छा से, कुछ लोग कौतक में पड़कर और कोई कोई समालोचना की दृष्टि से भी देखेंगे । अस्तु -

अतैकदाऽध्ययनसमये प्रसङ्गप्राप्तैरस्माकं गुरुपादैरुक्तं-
कर्त्रे स्वयं कर्म फलेदिहातः समस्ति गर्ते खनकस्य पातः ॥

अर्थ - एक समय की बात है कि हम लोगों को पढ़ाते समय हमारे गुरुजी ने प्रसङ्ग पाकर कहा कि जो जैसा करता है उसका फल उसे स्वयं वैसा ही भोगना पड़ता है । जैसे कि गड्ढा खोदने वाला आदमी खुद गड्ढे के भीतर जाता है ।

एतच्छ्रु त्वा मयोक्तं - एतत्कथमिति सोदाहरणं स्पष्टमुच्यताम् ।

अर्थ - यह सुनकर मैंने कहा कि इसको कोई एक उदाहरण देकर खुलासा करिये ।

गुरुदेवैरुक्तं श्रूयतां तावदस्यैव विपत्प्रतीपस्य जम्बूद्वीपस्य भारतवर्षान्तर्गत आर्यावर्तेऽमुष्मिंश्चतुर्वर्गसर्गमुत्थमहिम प्रसूत:सकल महीमण्डलालङ्करणभूतः

सुमृदुलसन्निवेशः षड्ऋतु-सञ्जातसम्पदो निवेशः सुप्रसिद्धो मालवनामदेशः स चानेककल्पपादपसंनिवेशतया ललिताप्सरः परिवेषतया च किलापरस्वर्गप्रदेश इव समवभासते ।

अर्थ - गुरुदेव बोले - सुनो भाई, विपत्तियों से दूर रहने वाले इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष नाम के क्षेत्र के अन्तर्गत आर्यावर्त खण्ड में मालव नाम का एक प्रसिद्ध देश है जो कि - धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गों की मौजूदगी की महिमा से युक्त है, अतः सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का अलङ्कार स्वरुप है, जिसकी बसावट बहुत अच्छी है और जहां पर छहों ऋतुएं अपना ठीक ठीक असर दिखलाती हैं, ऐसा वह देश है जो कि एक दूसरे स्वर्ग सरीखा प्रतीत होता है । क्योंकि स्वर्ग में अनेक कल्पवृक्ष होते हैं, उसी प्रकार उसमें अनेक प्रकार के वृक्ष मौजूद हैं तथा स्वर्ग में मनोहर अप्सराएं होती हैं वैसे ही वहां पर अच्छे जल वाले तालाब हैं ।

यत्रस्था ग्रामा अविकल्पप्रत्यक्षतया ताथागतत्वम् गोचराधारतया पञ्चाङ्गचेष्टाम् महिषीसनाथतया नरनाथवृत्तिंम्, समुद्भावितारामतया पुरुषाद्वैतस्थितिम् बहुव्रीहिप्रभृतिसम्पत्तया वैय्याकरणमतिम् नक्षत्रद्विज-राजवत्तया निशीथभावमनुसरन्ति।

अर्थ - जिस देश के गांव अविकल्प प्रत्यक्ष वाले हैं अर्थात वहां भेड़ और बकरियों के झुण्ड देखने में आते हैं इसलिये तो बौद्धों का अनुकरण करते हैं । गोचराधार हैं - वहां पर गायें बहुत होती हैं इस लिये पञ्चाङ्ग का भाव दिखलाते हैं, क्योंकि पञ्चाङ्ग भी गोचर ग्रहों के आधार पर चलता है । महिषी (भैंस या पट्टरानी) युक्त हैं इसलिये नरनाथपने को प्रगट करते हैं । आराम (बगीचा या पर्याय) को धारण करते हैं इसलिये ब्रह्मवाद को सिद्ध करते हैं। बहुव्रीहि (बहुत धान्य या एक प्रकार का समास) आदि सम्पत्ति को लिये हुये है इसलिये वैय्याकरण जैसी बुद्धि को उत्पन्न करते हैं । और नक्षत्रद्विजराजवत्ता को लिये हुये हैं - उनमें क्षत्रिय लोग और ब्राह्मण लोग न होकर मुख्यता से किसान लोग ही निवास

करते हैं इसलिये वे अर्द्ध रात्रि का अनुकरण कर रहे हैं क्योंकि रात्रि में नक्षत्र और चन्द्रमा का उदय हुआ करता है ।

समस्त्युज्जयिनी नाम नगरीह गरीयसी ।
यातीव स्वःपुरीं चेतुं स्वसौधैर्गगनंकषैः ॥१०॥

अर्थ - उस देश में एक उज्जयिनी नाम की बड़ी नगरी है जो कि अपने गगनचुम्बी महलों द्वारा देवपुरी को जीतने के लिये जाती हुई सी प्रतीत होती है ।

नरा यत्र सुमनसः स्त्रियः सर्वास्तिलोत्तमाः ।
राजा स्वयं सुनासीर प्रतापी खलु कथ्यते ॥११॥

अर्थ - जहां पर रहने वाले सब लोग देवों के समान अच्छे मन वाले, सभी स्त्रियाँ तिलोत्तमा (अच्छे लक्षणों की धारक) अप्सरा सरीखी हैं और स्वयं राजा तो सुनासीर-प्रतापी-इन्द्र सरीखा प्रतापवान् या सीर नाम सूर्य के समान प्रतापशाली उत्तम मनुष्य है ।

राजा वृषभदत्तोऽभूदेकदा तत्प्रपालकः ।
प्रजाहिताय यच्चित्तं वृषभावनया श्रितम् ॥१२॥

अर्थ - एक समय की बात है जब कि उस नगरी का रक्षक राजा वृषभदत्त था जिसका कि मन पुनीत धर्म भावना को लेकर हर समय प्रजा के हित में लगा रहता था ।

पत्नी तदेकनामाऽभूत्तस्यच्छन्दोऽनुगामिनी ।
स्मरस्य रतिवत्कान्तिरिवेन्दोर्भेव भास्वतः ॥१३॥

अर्थ - उस राजा की रानी भी उस ही जैसे नाम को धारण करने वाली वृषभदत्ता थी, जो कि उसकी आज्ञा के अनुसार चलने वाली, अतएव कामदेव की रति, चन्द्रमा की कान्ति और सूर्य की प्रभा के समान समझी जाती थी ।

गुणपालाभिधो राज-श्रेष्ठी सकलसम्मतः ।
कुबेर इव यो वृद्ध-श्रवसो द्रविणाधिपः ॥१४॥

अर्थ - वहां गुणपाल नाम का एक राजसेठ था जो कि सर्व-जन मान्य और वह इन्द्रके कोषाध्यक्ष कुबेर जैसा धनवान् था ।

अनेकेऽस्मिन् गुणाः किन्तु प्रसिद्धा भुवनोदरे ।
दृढ़संकल्पतैतस्य कर्तुमुद्दिष्टमात्मनः ॥१५॥

अर्थ - उसमें वैसे तो अनेक गुण थे, किन्तु खास गुण यह था कि वह अपने प्रण का पक्का था जिस किसी भी कार्य के करने का विचार कर लिया करता, उसे पूरा करके छोड़ता था ।

गुणश्रीर्नाम भार्याऽस्य समानगुणधर्मिणी ।
रुद्राणीव मृडस्याऽऽसीद्रूपसौभाग्यशालिनी ॥१६॥

अर्थ - उस सेठ के गुणश्री नाम की सेठानी थी जो कि करीब करीब उसी के समान गुण और स्वभाव वाली थी और इसीलिये वह महादेव के लिये पार्वती केसमान रुप तथा सौभाग्य से युक्त पति की प्रेम पात्री थी ।

तयोरेका सुता लक्ष्मीरिवाभूदब्धिवेलयोः ।
विषाऽस्या नाम सञ्जातं रजनीव निशोऽवनौ ॥१७॥

अर्थ - उन दोनों सेठ-सेठानी के एक लड़की हुई, जैसे समुद्र और समुद्र की वेला से लक्ष्मी उत्पन्न होती है । उसको दुनियां के लोग यद्यपि विष कहा करते थे, परन्तु यह उसका नाम वैसा ही था जैसा कि रात्रि का नाम रजनी अर्थात् चमकने वाली या पीली होता है । किन्तु रात्रि उससे उलटी अन्धकारपूर्ण काली हुआ करती है वैसै ही विषा भी अपने नाम से उलटे गुणवाली थी ।

अथैकदा समायातौ पर्यटन्तौ महामुनी ।
मार्गप्रकाशनायैतौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥१८॥

अर्थ - किसी एक दिन दो महामुनि घूमते हुये इधर गुणपाल के घर की ओर आ निकले, जो कि सूर्य और चन्द्रमा के समान सन्मार्ग के प्रकाश करने वाले थे ।

गुणपाल : भुक्त्यनन्तरमुच्छिष्टपात्राणि तावदेव बहिर्द्वारं चिक्षेप ।

अर्थ - गुणपाल सेठ ने उसी समय भोजन करके अपने झूठे बर्तनों को लाकर अपने द्वार के आगे डाल दिया ।

कोऽपि शिशुः समागत्य तत्र तदुच्छिष्टमत्तुं सहसैवाऽऽरब्धवान् ।

अर्थ - इतने में ही एक छोटा'सा बालक वहां आकर उन बर्तनों में बड़ी हुई जूठन को एकाएक खाने लगा ।

शिष्यमुनिः - तं. दृष्ट्वोवाच-

हे स्वामिन्नसकौ वालः सुलक्षणसमन्वितः ।
कुतोऽथ दैन्यभाक् कीदृक् दशास्य च भविष्यति ॥१९॥

अर्थ - उन दोनों मुनियों में छोटे मुनि ने उस लड़के को जूठन खाते हुये देखकर कहा कि - हे प्रभो यह बालक सुलक्षण दीख पड़ता है । इसके शारीरिक चिन्हों को देखने से जान पड़ता है कि यह भायशाली होना चाहिए । फिर यह इस दीन दशा में क्यों है और आगे इसका होनहार कैसा है ।

गुरुराह - असावस्यव गुणपालश्रेष्ठिनस्तनयायाः पाणिग्रहणं कृत्वाऽस्योत्तराधिकारी भूत्वा राज्यसम्मानभाग् भविष्यति ।

अर्थ - गुरु बोले - यह लड़का इसी गुणपाल सेठ की लड़की को परणेगा और इस सेठ के धन का मालिक होकर राजा से भी सम्मान पावेगा ।

अत्रत्यसार्थवाहस्य श्रीदत्तस्य कुलस्त्रियाः ।
श्रीमत्या जात एषोऽस्य पूर्वपापवशात् पुनः ॥२०॥

पिता मृत्युमगाद् गर्भ एव मातातु जन्मनि ।
नास्य रक्षक एकोऽपि साम्प्रतं भुवि वर्तते ॥२१॥

अर्थ - यह इसी नगरी के निवासी श्रीदत्त नामक सार्थवाह की धर्मपत्नी श्रीमती की कूखसे पैदा हुआ है । किन्तु पूर्व पाप के योग से इसके गर्भ में आते ही तो इसका पिता मर गया और जन्म लेते ही माता भी मर गई । अत: इस समय इसका कोई भी पालन पोषण करने वाला नहीं है ।

लघुमुनिः - स्वामिन् ! किन्तु खलु कारणं यदेतस्य मातृपितृ-प्रभृतिबन्धुवर्गवियोगो बाल्य एव जातः ! कुतश्चैष पतितोऽपि सहसैव पुनरुत्थाय धनदारादिभिः समलङ्कृतो भूत्वा राज्यसम्मानभाग् भविष्यति।

अर्थ - छोटे मुनि बोले- हे प्रभो, ऐसा कौनसा कारण हुआ जिससे कि बालकपन में ही इसके माता पिता आदि मर गये । और इस पतित अवस्था में होकर भी यह एक दम से उन्नति करके धन और स्त्री आदि से युक्त होकर राज्य-सम्मान का भी भाजन बन जावेगा।

गुरुः भो मुने ! श्रृण- शुभाशुभकर्मकाण्डप्रेरित स्यास्यजन्तोरेतस्यां संसृतिरङ्गभूमौ गेन्दुकवदुत्पतननिपतने भवत एव । पूर्वस्मिन् समयेषपि पाण्डुपुत्रा राज्यभृष्टा भवन्तः पर्यटन्तश्चारण्याद्रिप्रभृतिदुर्गमस्थानेषु वाचामगोचरं कष्टमनुभूय पुनरेकदा राज्यसिंहासनारुढा जाताः । मर्यादापुरुषोत्तमो रामचन्द्रोऽपि राज्यसिंहसनम-नुकर्तुमासन्नतरतामुपलभमानः सन्नपि सहसैव समापतितां वनवासिताम-नुभोक्तुमुच्चालीकृतः । पुनः स चैवायोध्याधीशो जात इत्यादि बहुलतरा दृष्टान्ता दृष्टिपथमायान्ति । तथैवास्यापि बालस्य स्वकृतपूर्वकर्मविचेष्टितवशीभूतस्य विषये न किञ्चिदपि किलाश्चर्यस्थानम् ।

अर्थ - गुरु बोले - भो साधुराज, सुनो- इस संसार रुपी रङ्गभूमि पर अपने भले और बुरे कर्मों के वश में पड़े हुए इस संसारी जीव को इसी प्रकार कभी ऊंचे को उठना और कभी नीचे को गिरना पड़ता है जैसे कि गेंद को। देखो पाण्डव लोग राज्य भ्रष्ट होकर एक समय तो पर्वत वन आदि दुर्गम स्थानों में घूमते हुए कैसे दुःखी हुए थे जिनके कि कष्ट का वर्णन नहीं किया जा सकता। किन्तु वे ही पाण्डव फिर पीछे एक दिन महाराजा बन गये थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी राज्य सिंहासन को पाने वाले थे। कित्तु एकाएक उन्हें अयोध्या छोड़कर वन में जाना पड़ा था। हाँ थोड़े दिन बाद वे ही आकर अयोध्या के राजा हुये थे। इसी प्रकार और भी बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं। वैसे ही अपने पूर्वकृत कर्म की चेष्टा के वश हुए इस बालक की भी ऐसी हालत हो, इसमें कौनसा आश्चर्य है ? कुछ भी नहीं।

लघुमुनि: - स्वामिन्नेतस्य पूर्वजन्मचेष्टामेव श्रोतुमहमिच्छामि भवतो मुखात्। सद्य एव सैव भवेद्रत्नवृष्टिर्दरिद्रजगतो नु खात्।

अर्थ - छोटे मुनि बोले हे प्रभो, मैं आपके मुख से इसके पूर्व जन्म की चेष्टा को ही सुनना चाहता हूं। वही तो दरिद्र आदमी के लिये एकाएक आकाश से हुई रत्न वृष्टि के समान है।

गुरु: - समस्त्यस्मिन्नेवावन्तीप्रदेशे स्वकीयसम्पर्क वशतोऽत्रसम्भवता वहता च शीतलेन समीरणेन प्रशोषितपान्थजनसिप्रा सिप्रा नाम नदी। यस्यामुत्क्रीडति सफरसमूहः सम्मदी। या बहुलहरितया वनततिममृतस्त्रु तिपरिपूर्णतयाऽमरावतीमतलस्पर्शतया ब्रह्मविंद्यां स्वजीवनेन प्रदूषितो-भयपक्षतया पुंश्चलीस्त्रियमनुसरति।

अर्थ - गुरु बोले - इसी अवन्ती नाम के प्रान्त में एक सिप्रा नाम की नदी है। जिस नदी पर से होकर बहने वाला शीतल वायु अपने सम्पर्क के द्वारा पथिक लोगों के पसीनों को सुखा देता है। जिस नदी में बहुत सा मछलियों का समूह प्रसन्नता पूर्वक उछल कूद मचाया करता है। जो नदी बहुलहरि (बहुतसी तरङ्गों या बहुत से सिंहों) वाली है

इसलिए तो वनीका, अमृत (जल या अमृत) स्रोत से परिपूर्ण भरी हुई है इसलिये स्वर्गपुरी का, वह बड़ी गम्भीर है उसके तल भाग को कोई नहीं पा सकता, इसलिए अध्यात्म विद्या का, और अपने जीवन (जल या चाल चलन) से दोनों पक्षों (दोनों तरफ के भागों को या पीहर और सुसराल) को दूषित कर देने वाली (तोड़ देने वाली या कलङ्कित कर देने वाली) है इसलिए व्यभिचारिणी औरत का अनुकरण कर रही है ।

या सकलजनप्रत्यक्षा विज्ञानविद्येव जलवादसम्प्रदानदक्षा सम्भवति।

अर्थ - जो प्राय: सभी लोगों के देखने में आती है और विज्ञान विद्या के समान जलवाद (पानी की बहुलता और जडवाद) को प्रगट करने में चतुर है ।

तस्या: प्रान्तभागे शिंशपानाम जनवसतिर्यत्र भवश्री-भवदेवयो: समुत्पन्नो मृगसेनो नाम धीवर: समावर्तत किल ।

अर्थ - उस नदी के किनारे पर एक शिंशपा नाम की छोटी सी बस्ती है । जिसमें कि भवश्री नाम की माता और भवदेव नाम के पिता का लड़का मृगसेन धीवर रहता था ।

तस्य च सेना सोमदासयो: समुत्पन्ना घण्टाभिधाना गेहिनी नाम।

अर्थ - उस मृगसेन की स्त्री का नाम घण्टा था जो कि सेना नाम की धीवरी और सोमदास नाम के धीवर की लड़की थी ।

मृगसेन-एकदा कुलपालनार्थं मत्स्यानानेतुं प्रातरेव जालं गृहीत्वा सरित्समुद्देशं गन्तुमुपचक्राम । पथि गच्छता तेन पार्श्वनाथजिनालयसमीप प्राङ्गणे समालोकि लोकसम्प्रदाय: । दृष्टवा च साश्चर्यचकितमानसस्तत्र गत्वा पश्यति यत्किल सर्वेषां लोकानां मध्ये कश्चिदेको जातरुपधर: सुमधुरवाचोच्चरति -

अर्थ - एक समय वह मृगसेन धीवर अपने कुटुम्ब के पालन पोषण के लिये मछलियां पकड़ लाने के लिये जाल उठाकर नदी पर जा रहा था कि मार्ग में वह क्या देखता है कि पार्श्वनाथ जिन मन्दिर के पास

की भूमि में बहुत से लोग इकट्ठे हो रहे हैं । यह देखकर उसके मनमें कुछ कौतुक सा हुआ, अतः वहां जाकर वह क्या देखता है कि उन सब लोगों के बीच में बैठा हुआ एक नग्न दिगम्बर साधु मीठी वाणी से यों कह रहा है -

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम् ।

अर्थ - जो सब में अनुस्यूत होकर उनको बनाये रखता है उसे परमब्रह्म कहते हैं अतः अहिंसा ही परमब्रह्म है । जो कि सब जीवों को निराकुल करता है ।

अहो – आत्मनो न सहेच्छल्यमन्यस्मै कल्पयेदसिम् ।
नुरसाङ्गत्यमित्येतत् किं पश्यति प्रजापतिः ॥२२॥

अर्थ - आश्चर्य तो यह है कि जो अपने आपके शरीर में चुभे हुए कांटे को भी नहीं सह सकता, वही दूसरे के लिये तलवार निकाले हुए रहे । आदमी की इस घृष्टता को प्रजापति अर्थात् राजा या विधाता कैसे सहन करता है, कुछ समझ में नहीं आता ।

जीवितेच्छा यथास्माकं कीटादीनां च सा तथा ।
जिजीविषुरतो मर्त्यः परानपि न मारयेत् ॥२३॥

अर्थ - जैसे हम लोगों को सदा जीवित रहने की इच्छा होती है वैसे ही कीड़े मकोडों को भी जीवित रहने की इच्छा होती है। मरने को कोई भी पसन्द नहीं करता । ऐसी दशा में मनुष्य स्वयं जीवित रहने के लिये दूसरे निरपराध जीवों को मारे यह कैसे ठीक हो सकता है ।

विभेति मरणमिति श्रुत्वा स्वस्य सदा पुनः ।
मारयेदितराञ्जन्तून् किमसौ स्यात् सुधीवरः ॥२४॥

अर्थ - जो आदमी अपने आपके मरण के नाम को सुनकर भी काँपने लग जाता है, वही दूसरे प्राणियों को कठोरता के साथ मारने के लिये तत्पर हो, वह कैसे सुधीवर (अच्छी बुद्धि वाला) हो सकता है।

मृगसेन इत्युपर्युक्त श्रुत्वा विचारयामास-यत्किल किमसौ वदति किमहमपरिणतपथप्रस्थायीति । पुनर्मनसि क्षणं विचार्य अहो सत्यमेवेदं यथास्माकं तथान्येषामपि प्राणिनां जीवने समानोऽधिकारो वर्तत इति निश्चित्य ससम्भ्रमं तस्य साधोःपादयो पतित्वा सगद्‌गदमुक्तवान्-स्वामिन्, त्राहि मां त्राहि मां कथन्नु मे पापीयसः समुद्धार इति ।

अर्थ - मुनि के उपर्युक्त व्याख्यान को सुनकर मृगसेन विचारने लगा कि यह क्या कह रहे हैं । क्या मैं खोटे मार्ग पर जा रहा हूं ? इस प्रकार थोड़ी देर अपने मन में विचार कर फिर सोचने लगा कि ठीक तो है जैसा हम लोगों को, वैसा ही इतर प्राणियों को भी जीते रहने का अधिकार है । हमें उन्हें मारने का अधिकार कहां से हो सकता है । ऐसा सोचकर शीघ्र ही उन मुनि राज के चरणों में पड़कर गद्‌गद स्वर से कहने लगा कि- हे प्रभो मुझे बचाओ, बचाओ, मुझ महापापी का कैसे उद्धार होगा ।

साधु - यद्यपि त्वमधुना सर्वथा हिंसा त्यक्तुमसमर्थस्तथापि त्वज्जालके समापतितमाद्यं जीवं मोक्तुमर्हसीति ।

वर्तितव्यं यथाशक्यं मानवेन सता पथा ।
पीयूषं नहि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते ॥२५॥

अर्थ - साधु महाराज बोले - यद्यपि तू इस समय हिंसा करने सेसर्वथा दूर नहीं हो सकता है, फिर भी तेरे जाल में सबसे पहले जो जीव आवे उसे छोड़ देना तेरे लिये भी कोई बड़ी बात नहीं है ।

चलो जहां तक हो सके उचित मार्ग की ओर ।
सुख देता है मनुज को क्या न अमृत का कोर ॥

मृगसेनः एतत्तु मया सहजमेव कर्तुं पार्यत इति मनसि कृत्वा सङ्गरयति स्म यतिपादयोरग्रे ।
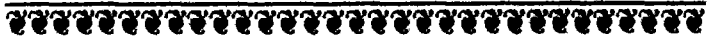
अर्थ – मृगसेन ने यह तो मैं बहुत आसानी से पाल सकता हूं, ऐसा अपने मन में विचार करके मुनि महाराज के चरणों में उसने प्रतिज्ञा करली कि ठीक है महाराज, मैं पहिले आये हुये जीव को नहीं मारूंगा।

साधु : समुवाच – विचार्य व्रतमायच्छेदात्तं यत्नेन पालयेत् ।

अर्थ – साधु ने कहा – देखो जो कुछ प्रतिज्ञा लेना, खूब सोच समझ कर लेना, किन्तु की हुई प्रतिज्ञा को सावधानी के साथ निभाना चाहिये ।

मृगसेनो जगाद – प्राणहानावपि प्रणहानिर्न भवितुमर्हतीति यतः खलु–

न मानवो यद्वचसोऽप्रतीतिः सतां वचोनिर्वह एव रीतिः ।
उक्तस्य भूयात् परिपूर्तयेऽवच्छिन्नोऽन्यथा स्यादनुमौनमेव ॥२६॥

अर्थ – प्राण भले ही चले जावें किन्तु की हुई प्रतिज्ञा कभी नहीं तोडूंगा । क्योंकि इतना तो मैं भी समझता हूं कि – जिसके कहे हुये वचन की प्रतीति नहीं वह मनुष्य ही नहीं । अपनी कही हुई बात को पूरा करके बताना ही सत्पुरुषों की रीति है । मनुष्य या तो कुछ कहे नहीं, चुप बैठा रहे और अगर कह दिया तो फिर उसे पूरा करके दिखलाना चाहिये ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृवतरी देवी च यं धीचयम् ।
तत्प्रोक्ते प्रथमो दयोदयपदे चम्पूप्रबन्धे गतः
लम्बो यत्र यतेः समागमवशाद्धिंस्त्रोऽप्यहिंसा श्रितः ॥१॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुऐ, वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर विरचित इस दयोदयचम्पू प्रबन्ध में मृगसेन धीवर द्वारा अहिंसा व्रत के आंशिक नियम को ग्रहण करने का वर्णन करने वाला पहला लम्ब समाप्त हुआ।

❖ ❖ ❖

अथ द्वितीयो लम्ब:

सत्सङ्गत प्रहीणोऽपिपूततामेति भूतले ।
शुक्तिकोदरसम्प्राप्तो वार्बिन्दुर्मौक्तिकायते ॥१॥

मृगसेन उपर्युक्तां कारिकां मुहुर्मुहु:स्मरन्नथ तीर्थस्नात इव समुत्थाय प्रसन्नतया जालमादाय सिप्रां प्रति गत्वा तत्र प्रक्षिप्ते जाले प्रथममेकां रोहितां नाम मत्सीं समायातां दृष्ट्वा तां, सचिह्नीकृत्य मुक्त्वा पुनरपि नद्यां जालं त्यक्तवान् ।

अर्थ - मृगसेन जैसा नीच कुल वाला भी मनुष्य सत्पुरुषों की सङ्गति से पवित्र बन जाता है जैसे कि सीप के पेट में गया हुआ जल का बिन्दु भी मोती बन जाता है, इस सुभाषित को पुन: पुन: स्मरण करता हुआ, एक तीर्थ पर नहाये हुए मनुष्य की भांति प्रसन्नता पूर्वक उठकर और जाल को लेकर सिप्रानदी पर जाकर उसमें डाले हुए अपने जाल में सर्व प्रथम आई हुई एक रोहित नाम मछली को देखकर उसे किसी चिह्न से चिह्नित करके वापिस नदी में डालकर फिर दुबारा अपने जाल को उसने नदी में फैलाया ।

किन्तु यावच्चतुर्वारं सैव समापतितेति कुतो वध्यभावमाप्नुयात्ततो विचचार -

जाले समायाति झष: सचिह्न: किन्नाथ किन्नाथकरोमि खिन्न: ।
तत: प्रतीच्छन्ति च पुत्रदारा इत: पुन: सङ्गरसारधारा ॥२॥

अर्थ - उस मृगसेन ने इसी प्रकार चार बार अपने जाल को नदी में फैलाया किन्तु चारों ही बार वही मछली आई जो कि प्रारंभ में आई थी उसे वह कैसे मार सकता था इसलिए विचार करने लगा कि हे नाथ, क्या करुं और क्या नहीं करुं ? क्योंकि मेरे जाल में वही मछली बार बार आती है जो कि प्रारंभ में आई थी । जिसके कि मैंने चिन्ह कर

दिया था। अब उसे मारूं तो कैसे, जबकि प्रतिज्ञा ले चुका हूं। परन्तु नहीं मारता हूं तो उधर स्त्री पुत्रादि सब प्रतीक्षा कर रहे हैं उनके निर्वाह का क्या मार्ग है अतः मैं बड़ा दुःखी हूं।

तदा किं पुत्रदारादिकृते किलालभ्यलब्धं व्रतं त्यक्तुमर्हामि ? नहि समर्हामि। किन्तु पुत्रदारादयोऽपि स्वजीवनाय मामेवाश्रयमभीच्छन्ति किलेति दोलायते मामकीनं चेतः इतो गर्तपातस्त्वितः कूपमस्ति तावत्।

अर्थ - तो फिर क्या स्त्री पुत्रादि के लिए अत्यन्त दुर्लभता से गुरु की कृपा से प्राप्त हुए व्रत को तोड़ देना चाहिये, नहीं ऐसा नहीं हो सकता किन्तु स्त्री पुत्रादि का जीवन भी तो मेरे भरोसे पर है न ? वे सब फिर किसके सहारे जीवित रहेंगे। मेरा मन द्विविधा में पड़ा है - एक ओर गड्ढा है और दूसरी ओर कुआ है, क्या करुं ?

क्षणमेवं विचार्य पुनर्विचारान्तरमाश्रयामास - आः स्मृतम्

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं देशकृते त्यक्त्वाप्यात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥३॥

अर्थ - उपर्युक्त प्रकार से कुछ-असमञ्जस में पड़कर फिर इस प्रकार से अपने विचार को उसने बदला कि ओह ! अब समझा नीति में लिखा हुआ है- कि जहां बहुतों का सुधारहोता हो, वहां एक का बिगाड़ कर देना ठीक है। एवं कुछ लोगों को छोड़ने से गांव भर का सुधार होता हो वहां कुछ लोगों को छोड़ दे। किन्तु जहां पर अपना आपा ही बिगड़ता दीखे वहां पर सब कुछ को भी छोड़कर अपने आपको सम्भालना चाहिये, अपने कर्तव्यसे कभी नहीं डिगना चाहिये।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥४॥

अर्थ - कहा भी है - आपत्ति के समय काम आवेगा इस विचार से धन की रक्षा करना, उसे बनाये रखना मनुष्य का काम है। परन्तु

जहां स्त्रियों की लाज जाती हो अपना घर बिगड़ रहा हो - वहां पर धन को व्यय करके भी उनकी लाज रखना चाहिए। किन्तु जहां अपने पर ही वार हो रहा हो, वहां धन और स्त्री आदि सबको छोड़ कर अपने आपको बचाने की चेष्टा करना चाहिए ।

व्रतपरिरक्षणमेव चात्मपरिरक्षणमतस्तदेव सम्भालनीयमितियतो वनितात-नयादिपालनकरणेनैकान्तत आत्मनोऽवहेलनाकारकस्य यद् भवति तदेतत् -

अर्थ - अपने ग्रहण किये हुए व्रत की रक्षा करना ही, आत्मा की रक्षा है इसलिए उसे ही अच्छी तरह सम्भालना चाहिए। जो आदमी स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब पालन में पड़कर अपने आपको खो बैठता है । उसकी जो कुछ दशा होती है वह इस प्रकार है -

एकस्मिन् समयेकश्चिदपि भिक्षुः कतिपयगृहेभ्यो भिक्षावृत्तितश्चूर्णमादाय स्वपत्नीहस्ते दत्तवान् । तथा च यावत्करपट्टिकाततिः समपादि, तावदेकेन लाङ्गूलेनाऽऽगत्य सा निःशेषतां नीता । ततो भिक्षुभार्या विलक्षतया वदति स्मेति विलपन्ती-

पक्वेषु धान्येषु तुषारपातः करोमि किम्भो तनयस्य तात।
किं जीवनोपायमिहाश्रयामि प्राणाः पुनः सन्तु कुतो वतामी ॥५॥

अर्थ - एक बार की बात है कि एक भिखारी ने खुछ घरों से आटा मांग लाकर अपनी स्त्री को दिया । और उसने ज्यों ही रोटियां बनाकर तैयार की एक बन्दर आकर उनको सफा चट कर गया । तब उस भिखारी की स्त्री इस प्रकार विलाप करने लगी - हे नाथ, हे स्वामिन् मैं क्या करुं ! पके पकाये चावलों के खेत में पाला पड़ा गया । हाय रे बाप, अब जीवन कैसे रहेगा ? मुझे कोई भी दूसरा उपाय नहीं दीखता। क्या खाकर ये प्राण बचेंगे, इत्यादि ।

भिक्षुः रोदनं श्रुत्वा समागत्य निजगाद-दुर्भिक्षभावादुपवासविधि-रारम्भणीयः ।

अर्थ - इस प्रकार रुदन सुनकर जब भिखारी आया तो बोला कि अब और भीख मिलना तो इस समय कठिन है, आज तो उपवास ही करना होगा ।

भिक्षुभार्याऽऽह - भो भगवन् ! भवानहं चोपवासेनापि पारयितुं समर्हाव: । किन्तु वृद्ध श्वश्रू शिशुरपि तु वर्तते, आत्मसंयमनं तु शक्यम्, किन्तु सम्भालीयानां सम्भालनन्तु कर्तव्यमस्ति ।

अर्थ - भिखारी की स्त्री बोली - हे भगवान, ठीक है आप और मैं तो उपवास ही कर जायेंगे । किन्तु बूढ़ी सासू और बच्चा भी तो है। अपने आपको तो समझा बुझाकर भी रक्खा जा सकता है, किन्तु सम्भालने योग्यों की तो सम्भाल करना ही चाहिए ।

भिक्षु: - क्षणं संशोच्याऽऽङ्गणतो बहिर्व्रजन् विचारयामासकिलापत्काले मर्यादा नास्तीति । तावतैकत्र स्थाने क्षीरान्नस्थाली सम्पन्ना सती दृष्टिपथमायता। पाचकस्तु कार्यान्तरव्यासङ्ग इति दृष्ट्वा निभृतमपि तामादाय पलायाञ्चक्रे। किन्तु द्रुतमेव पृष्ठ लग्नेन घनिना सन्धृतस्सन्नाह-नाहमिहापराधवान् मया तु मातृ पुत्रादिकृते कृतमेतादृक्

अर्थ - थोड़ी देर सोचकर भिखारी घर से बाहर निकला और विचारने लगा कि - आपत्ति के समय करने न करने योग्य का कोई विचार नहीं होता, ऐसी कहावत है । ऐसा विचार करते हीउसे एक स्थान पर पकी पकाई खीर की थाली दीख पड़ी, जिस खीर के कि बनाने वाले का ध्यान किसी दूसरी ओर लगा हुआ था । इस लिए उसे धीरे से उठा कर भिखारी ले भागा । किन्तु इतने में उसका स्वामी भी उसके पीछे लगा और शीघ्र ही आकर के उसने उसे पकड़ लिया । तब भिखारी बोला कि मेरा इसमें क्या दोष है, मैंने तो यह सब काम इन माता पुत्र आदि के लिए इनके कहने से किया है ।

तैरुक्तं - किमस्माभिश्चौर्यार्थं समादेशीति ।

अर्थ - घर वालों ने कहा - क्या हम लोगों ने भी चोरी करने के लिये कहा था ?

धनिना मुष्टिघातादिभिराहत्य स एव कोटपालाय समर्पित: ।

अर्थ - पुन: उस धनी पुरुष ने मुक्कों की मार आदि से मारते पीटते हुए ले जाकर उस भिक्षुक को कोतवाल के आधीन कर दिया, अर्थात् उसे पकड़ा दिया ।

इत: क्षीरान्नं चतुर्भागीकृत्य जननी पत्नी-पुत्रैस्तद्भागत्रयं भक्षितम्।

अर्थ - इधर उसके माता स्त्री और पुत्रों ने मिल कर उस खीर के चार समान भाग करके तीन भाग उन्होंने खा लिये ।

एक भागश्च भिक्षुनिमित्तं स्थापित: । स च तदागमनात्पूर्वमेव सारमेयेन खादितोऽत: स बुभुक्षामेवानुभवन्नासीत् ।

अर्थ - खीर का एक भाग जो कि उस भिक्षु के निमित्त उन्होंने रख छोड़ था उसे उसके आने से पहले ही आकर एक कुत्ते ने खा लिया। अत: उस भिखारी को भूखा का भूखा ही रहना पड़ा।

तत: कुटुम्ब परिपालन-चिन्तायामात्मानं कर्तव्यपथान्न भ्रंशयेत् धीमानिति सिद्धान्त: ।

अर्थ - उपर्युक्त कथानक में खीर तो कुटम्बियों ने खाई और मार भिखारी को खानी पड़ी । इससे यह बात सिद्ध हुई कि कुटुम्ब पालन की चिन्ता में पड़ कर भी समझदार आदमी को कभी भी न करने योग्य कार्य नहीं करना चाहिए ।

घण्टा धीवरीत: खलु प्रतीक्षते स्म यत्तावत्प्रातरेव गत: प्राणनाथ: सोऽधुनापि नायात: सन्ध्यासमयोऽपि जात: । भगवान् गभस्तिमाली यावद् दिनमविश्रान्तपर्यटनेन श्रान्तत्वादस्ताचलचूलिकामवलम्ब्य विश्रान्तिमवाप्तुं वाञ्छति। चिरन्तनानेहसोऽनन्तरमागच्छन्त महस्करं प्रतिगृहीतुमिव किल सुप्रसन्नारविन्दसन्दोहसम्पा-दितरागरञ्जित दुकूलावलिमादधाना प्रतीचीयमनेकश: स्वनीडान्वेषण-तत्परपतत्रिपरम्परायातकलकलमिषेण खलु स्वागतगानपरायणा प्रतिभाति ।
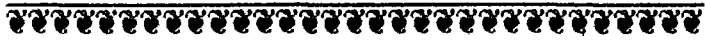
अर्थ - इधर घण्टा धीवरी प्रतीक्षा करती हुई विचार रही है कि जो प्राणनाथ सवेरे ही गया था वह अब तक भी नहीं आया, संध्या भी हो चली । मार्ग-प्रदर्शक सूर्य नारायण, दिन भर परिभ्रमण करने के कारण अब अस्ताचल की चोटी पर विश्राम लेना चाहते हैं । चिरकाल के बाद आने वाले सूर्य को स्वीकार करने के लिए ही मानो प्रसन्नता को प्राप्त होने वाली, एवं कमलों के समूह में से निकले हुये रङ्ग से रङ्गी हुई साड़ी को धारण करने वाली यह पश्चिम दिशा अपने अपने घोसलों को खोजने में लगे हुए इन बहुत से पक्षियों की परम्परा के कल-कल शब्द के बहाने से स्वागत गान करने में लगी हुई है ।

उलूकः स्तेनवन्मोदमादधति स्वचेतसि ।
दूरं रजस्वलेवेशादपि कोककुटुम्बिनी ॥६॥

भृङ्गमन्तर्दधातीयं वेश्येव विसिनी पुनः ।
लोकमाक्रामति तमो मनो मूढस्य पापवत् ॥७॥

अर्थ - देखो इस समय उल्लू पक्षी भी चोर की तरह से अपने मन में बड़ी खुशी मना रहा है । यह चकवी रजस्वला की भांति अपने स्वामी से दूर हट रही है । कमलिनी वेश्या की तरह से भृङ्ग (भौंरे या कामी पुरुष) को अपने घर में घुसा कर छिपा रही है और मूढ़ प्राणी के मन को पाप की तरह से अन्धकार सारे संसार को घेर रहा है ।

गावोऽपि गहनमवगाह्याधुना गोष्ठमायातः । पुनरपि न जाने कुतो न समायाति स्वामी । किन्तु खलु पदस्खलनभावेन सिप्रायां पतित्वा मकरैः खादित उत किल दिग्भ्रमभावेन वर्त्म विहायान्यतो जगामेति चिन्तातुरतयाऽनल्पविकल्पकल्पकस्रोतसि सन्निमज्य तरलतरविलोचना बभूव।

अर्थ - ये गाएं भी वन में से चर कर अपने स्थान पर आ चुकीं, फिर भी न मालूम मेरा स्वामी अभी तक क्यों नहीं आ रहा है । क्या

कहीं पैर फिसल जाने से सिप्रा में तो नहीं गिर पड़ा है, जिससे कि उसे मगर-मच्छों ने खा डाला हो । अथवा मार्ग भूल कर कहीं दूसरी ओर तो नहीं चला गया ? इस प्रकार की चिन्ता के मारे अनेक तरह के विकल्प जाल रुप प्रवाह में डूब कर अपने चञ्चल नेत्रों से इधर उधर देखने लगी ।

तावत्तैव चिरक्षुधितव्याघ्रीव जरद्गवं, चातकगेहिनीव समुद्भ्रान्तपर्जन्यं, पिकीव प्रत्युद्गतं वसन्तं, दृष्टिपथमायान्तं प्राणपतिमवलोकयामास सा।

अर्थ - इतने ही में उसने आते हुए मृगसेन को देखा जैसे कि बहुत काल की भूखी व्याघ्री एक बूढे बैल को, चातक की स्त्री उमड़ते हुये मेघ को और कोयल प्रगट होते हुए वसन्त को देखा करती है ।

पुनरपि पराजितद्यूतकारमिव रिक्तपाणिम्, सायन्तनविरोचनमिवा-पहतप्रभम्, परिमुषितपान्थमिव मन्दपादं तमेनमवलोक्य चेतसि किञ्चिच्चिन्ता मेवातिवाह-यन्तीत्थमुवाच-भो प्रभो, क्वैतावती वेला लग्ना ? कथं च दरिद्रितहस्त एव भवानिति ।

अर्थ - फिर उसने देखा कि वह तो हारे हुए जुआरी की तरह खाली हाथ ही आ रहा है, सायंकाल के सूर्य की तरह से प्रभाहीन है, लुट गये हुए पथिक की तरह धीरे धीरे चल रहा है । ऐसे उसे देखकर अपने मन में कुछ चिन्ता करती हुई वह इस प्रकार बोली- कि हे स्वामी, आपको आज इतनी देर कहां लग गई और फिर भी आप खाली हाथों ही कैसे आ रहे हैं ?

मृगसेनः प्रत्यवाच- भोभद्रे, मार्गे गच्छताऽद्य मया दरिद्रेण निधिरिवैको महात्मा समवाप्तः । यस्य स्वरुपमिदं -

समानसुख-दुःख सन् पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
निःसङ्गों निष्पृहः शान्तो ज्ञानध्यानपरायणः ॥८॥

अर्थ - मृगसेन बोला - हे भद्रे, मार्ग में जाते समय आज मुझे एक महात्मा मिले - जैसे कि किसी दरिद्री को कोई निधि मिल जावे। उसका स्वरुप ऐसा है -

जो सुख और दु:ख दोनों को एकसा समझता है । जिसके पास कोई बर्तन नहीं है, अपने हाथों में ही खाता है । शरीर पर बिल्कुल कोई कपड़ा नहीं है, जिसके पास कोई साथी भी नहीं है और जिसको किसी प्रकार की कोई इच्छा भी नहीं है । बिलकुल शान्त है, हर समय ज्ञानाभ्यास करने में, या ध्यान करने में ही लगा रहता है ।

सद्म श्मसानं निधनं धनं च विनिन्दनं स्वस्य समर्चनं च ।
सकण्टकं पुष्पमयञ्च मञ्चं समानमन्तः करणे समञ्चन् ॥९॥

अर्थ - जो अपने अन्तरङ्ग में भवन को और श्मसान को, दरिद्रपने को और धन को, अपनी निन्दा को और बड़ाई को, कांटों की शय्या को और फूलों की सेज को समान समझता है ।

शय्येयमुर्वी गगनं वितानं दीपो विधुर्मञ्जुभुजोपधानम् ।
मैत्री पुनीता खलु यस्य भार्या तमाहुरेव सुखिनं सदार्याः ॥१०॥

अर्थ - जिस महर्षि के सोने के लिए तो यह लम्बी चौड़ी पृथ्वी ही शय्या बनी हुई है, आकाश ही जिसके लिए चन्दोवा या छत है, चन्द्रमा ही जिसे दीपक का काम देता है, अपनी भुजा का ही जिसके पास तकिया है और प्राणी मात्र के साथ में मैत्री रखना इसी को जिसने अपनी कुलाङ्गना बना रक्खी है, ऐसे उस महापुरुष को आर्य जन सदा परम सुखी मानते हैं ।

भिक्षैव वृत्तिः कर एव पात्रं तपः प्रसिद्ध्यर्थमिहास्ति गात्रम् ।
दिशैव वासः समतैव शक्तिर्जगद्धितायाऽऽत्मपदप्रसक्तिः ॥११॥

अर्थ - जिस महात्मा के पास भिक्षा बिना याचना किए हीगृहस्थ आदर पूर्वक प्रतिग्रहण करके जो कुछ रुखा सूखा दे- वही तो एक आजीविका

है, हाथ ही जिसके भोजन-पात्र है, शरीर का रखना भी जिसका केवल एक तप करने के लिये है, दिशा ही जिसके वस्त्र हैं, समता प्राणिमात्र को समान समझते हुए किसी से भी रागद्वेष नहीं करना-किसी को भला और किसी को बुरा नहीं समझना- यही जिसके पास अद्वितीय बल है और संसार के जीवमात्र के हित को ध्यान में रखते हुये बाह्य क्रियाओं से रहित होकर हर समय आत्म-तत्पर होना ही जिसका मुख्य कार्य है।

पुषपैर्नरोऽर्चां विदधातु कोऽपि कण्ठे कृपाणं प्रकरोतु कोपी ।
निहन्तु कामः खलु सामधाम मनो मनोज्ञस्य तयोर्ललाम ॥१२॥

अर्थ - भले ही कोई आदमी फूलों से उसकी पूजा करे, चाहे मारने की अभिलाषा से गुस्से में आकर उसके गले पर खड्ग प्रहार करे, दोनों में ही जिसका मन संकल्प-विकल्प से रहित होकर परम शान्त बना रहता है उस महात्मा की मैं क्या प्रशंसा करुं ?

हे प्रिये, यथैवाथर्ववेदस्य जाबालोपनिषदः षष्ठसूत्रे यथोक्तं परमहंसस्य स्वरुपं तदेवानुरुध्यमानो यर्थाथतया विराजते स भूमौ । श्रृणु जावालोपनिषदः सूत्रं तदेतत् ।

यथा जातरुपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः शुद्धमानसः प्राणसन्धारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभयो समो भूत्वा शून्यागार देवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्ष मूलकुलालशालाग्निहोतृगृहन-दीपुलिनगिरिकुहरकन्दरकोटरनिर्जनस्थण्डिलेषु तेष्वनिकेतनवास्यप्रयत्नो निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठोऽशुभकर्मनिर्मूलनपरः सन्यासेन देहत्यांग करोति स परमहंसो नामेति (पृ २६० सूत्र ६)

अर्थ - उक्त प्रकार से उस साधु का वर्णन करके मृगसेन ने पुनः कहा - हे प्यारी, अथर्वद की जाबालोपनिषद् के छट्ठे सूत्र में जैसा परम हंस साधु का स्वरुप बताया है ठीक उसी के अनुसार चलने वाला वह साधु पृथ्वी पर विराजमान है । देख उसमें लिखा है- "जो एक भोले

बालक के समान निर्विकार नग्न रुप का धारक हो, जिसके मन में मायाचार छलच्छिद्र आदि की ग्रन्थि न हो, बाह्य में भी जिसके पास कोई परिग्रह न हो। जो उसी प्रसिद्ध ब्रह्म मार्ग में सदा तत्पर रहता हो, पवित्र मन वाला हो, केवल प्राण सन्धारण के लिये निश्चित समय में जाकर बिना किसी पात्र के अपने उदर रुप पात्र में ही भिक्षा भोजन करने वाला हो, भोजन मिले तो ठीक और न मिले तो कोई खेद नहीं, इस प्रकार के सम विचार का धारक हो, शून्यागार - सूना मुक्त मकान देवस्थान, घास की कुटी, वृक्षमूल, नदी-पुलिन गिरि-कन्दरा आदि में विश्राम करने वाला हो, सांसारिक बातों में बिल्कुल ममता-रहित हो, निर्विकल्प निस्तब्ध ध्यान में तल्लीन होने वाला हो अन्तरात्मा पर जिसका पूर्ण विश्वास हो, खोटे कर्मों को काटने में तत्पर हो, सन्यास- शान्तिपूर्वक अपने शरीर को त्याग करने के लिये तैयार हो, वह परम हंस होता है ।''

तत्पादयो: सम्पतता मया तदुपग्रहसमर्पणस्वरुपतया मम जाले प्रथमवारं यत्किञ्चित्समागच्छति तदहं न मारयामीति प्रत्ययमुपादाय शीघ्रमेव स्रोतस्विनी समीपं गत्वा जालंप्रक्षेपे कृते सत्येका महामत्सी समायाता। तां तस्यामेव यथा प्रतिज्ञातं मुक्त्वा पुनरनेकवारं जालप्रक्षेपे कृतेऽपि न ततोऽन्यत्किञ्चित्समुपालब्धं किं करोमि ।

अर्थ - उस महात्मा के पैरों में पड़ते हुए मैंने भेट के रुप में यह प्रतिक्षा करली कि- मेरे जाल में प्रथम बार जो भी जीव आवेगा उसे मैं नहीं मारूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर जब मैंने नदी पर जाकर उसमें अपना जाल डाला तो एक बड़ी भारी मछली आई । उसको मैंने अपनी प्रतिज्ञानुसार नदी में वापिस छोड़ कर फिर कई बार जाल को फैलाया, किन्तु उसके सिवाय और कुछ भी नहीं आया। तब बता, मैं क्या करता ? अत: यों ही खाली हाथ चला आया।

घण्टा - मनसि अहो साधुसमागमादेतदीदृशं कृतमनेन स्वामिना, मा कदाचिदन्यदाप्येवमेष कुर्यादिति सम्प्रधार्य बहिरेवं जगाद-भो जाल्म, भवताऽऽर्हतमतानुयायिनो वेदबाह्यस्य नग्नस्य सम्पर्कमासाद्य विरुपक-मेतत्कृतम्।

अर्थ - यह सब सुनकर घण्टा ने मन में विचार किया कि- हाँ, इस मेरे स्वामी ने साधु सम्पर्क में पड़ कर के ऐसा किया है सो फिर भी कहीं ऐसा न कर बैठे । बाद में वह उससे बोली भो निठुर, आपने वेद से बाह्य चलने वाले जैनमतानुयायी नंगे साधु के पास पहुंच कर यह प्रतिज्ञा ले ली सो बहुत बुरा किया ।

मृगसेनः - कथं किल स वेदबाह्य, वेदेऽपितुसाधोस्तादृगेव स्वरुपं निरुपितमस्तीति मया वेदविदां मुखाच्छ्रुत मनेकवराम् । अयि मुग्धे, यजुर्वेदस्यैका-न्नविंशतितमाध्याये मन्त्रं -

आतिथ्यरुपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः, रुपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता इति समायातमासीत् ॥१४॥

अर्थ - घण्टा की बात सुन्कर मृगसेन बोला - वह वेद से विपरीत चलने वाला है यह कैसे माना जाय, जब कि वेद में भी साधु का स्वरुप वैसा ही बतालाया है जो कि वेद के जानकारों के मुख से मैंने कई बार सुना है।

हो भोली । यजुर्वेद की उन्नीसवें अध्याय के चौदहवें मन्त्र में महावीर की प्रशंसा की है वहां उसको नग्न बताया है ।

उपनिषत्स्वपि नारदपारिव्राजकोपनिषदि-

मुनिः कोपीनबासास्स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।
एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

अप्सु वस्त्रं कटीसूत्रमपि विसृज्य सर्वकर्मनिर्वर्तकोऽहमिति स्मृत्वा जातरुपधरो भूत्वा इत्यादि ॥३२॥

नारद पारिव्राजकोपनिषद में भी लिखा है कि मुनि दो प्रकार के होते हैं एक तो वह जो कोपीन मात्र धारण करता है । दूसरा वह जो बिल्कुल नग्न होता है जो ध्यान में तत्पर रहता है और यही ज्ञानवान योगी परमात्म अवस्था को प्राप्त कर सकता है । तथा जल में वस्त्र को

और करधनी को बहाकर मैं सब कर्मों से रहित हो चुका हूं ऐसा सोचता हुआ आदमी नग्न दिगम्बर वेष को धारण कर इत्यादि लिखा है

मैत्रेयोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य कारिका- १९

देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बरसुखोऽस्म्यहमित्यादि ।

तुरीयोपनिषदि च - सर्वमप्सु संन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा, इत्यादि।

मैत्रेयोपनिषद् के तीसरे अध्याय के उन्नीसवें सूत्र में भी लिखा है कि देश काल की अपेक्षा न करके मैं दिगम्बर सुखी हो रहा हूँ । इसी प्रकार तुरीयोपनिषद् में कहा है कि सब कुछ को जल में विसर्जन करके दिगम्बर होकर ....इत्यादि।

संन्यासोपनिषदि च - देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर आदि । जातरुपधरो भूत्वा इत्यादि (परमहंस) सन्यस्य जातरुपधरो भवति स ज्ञान वैराग्यसंन्यासीत्यादि च ।

इसी प्रकार संन्यासोपनिषद में भी, "और सब कुछ छोड़ कर देहमात्र को धारण करते हुए दिगम्बर बन जावे, तत्काल के पैदा हुए बालक सरीखा निर्विकार हो जावे, तथा संन्यास लेकर तत्काल के पैदा हुए बालक सरीखा होता है वही ज्ञान वैराग्यशाली होता है" इत्यादि रुप से जगह जगह साधु का स्वरुप दिगम्बर ही लिखा हुआ मिलता है ।

किञ्च अयि दयिते पुराणग्रन्थेषु तु भूरिश एव दिगम्बरप्रशंसाऽस्ति।

पद्मपुराणे भूमिकाण्डस्याध्याये ६५

नग्नरुपो महाकाय: सितमुण्डो महाप्रभ: ।

मार्जिनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन् ॥

और हे प्यारी कहां तक बताऊं- पुराण ग्रन्थों में तो दिगम्बर की कई जगह प्रशंसा आई है । पद्म पुराण के भूमि काण्ड के अध्याय पैंसठ में लिखा है- "जो साधु नग्न रुप को धारण किये हुये है, लम्बी कद

का है, सफेद शिर वाला है, अच्छी कान्ति वाला है और अपनी कांख में एक मोर पंखो की पीछी लिये हुये है ।"

स्कन्द्रपुराण्स्य प्रभासखण्डाध्याये षष्ठे-

पद्मासन: समासीन: श्यामूर्ति दिगम्बर: ।

नेमिनाथ: शिवोऽथैवं नाम चन्द्रस्य वामन ॥

इसी प्रकार स्कन्ध पुराण के प्रभास खण्ड के छठे अध्याय में भी लिखा है - "हे वामन, आप ठीक समझो कि- जो पद्मासन से बैठा हुआ है, काले वर्ण के शरीर वाला है, दिगम्बर अर्थात् वस्त्र रहित है, वह नेमिनाथ ही कल्याण रुप शिव का रुप है" इत्यादि।

अपि च भद्रे स यदि किलाऽऽर्हतो मतमेवानुशास्तीत्यपि मन्यतां, पुनरपि वेदबाह्यो वेदाद् बहिर्गत: कथं कथयितुमर्हो यदा वेदे किल तस्यैवाऽऽर्हतो भूरिशस्तवनानि विद्यन्ते । पश्य-ऋग्वेद अ १ अ ६ व ३० मन्त्र १अ १५ सूक्त १४

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव समहेमा मनीषया भद्राहिन: प्रमतिरस्य ससद्यग्ने सख्ये मारिषा मावयं तव ॥२॥

टीका :- हेऽर्हस्त्वंविधातासि निजबुद्धिकौशलेनेमं समस्तं भूमण्डलं रथमिव चालयसि तव मतमस्माकं कल्याणायास्तु वयं मित्रस्येव तव संसर्ग सदा वाञ्छाम इति ।

अर्थ - और भोली, थोड़ी देर के लिये मान लिया कि वह आर्हतमतानुयायी ही है, तो भी वह वेद बाह्य-वेद के प्रतिकूल चलने वाला कैसे कहा जा सकता है जब कि उसी अर्हन् की वेद में स्थान स्थान पर प्रशंसा की गई है । (देख-ऋग्वेद अ १ अ.६ व ३० मं. ९ अ १५ सूक्त १४) में कहा है- " हे अर्हन् आप विधाता हैं अपनी चतुरता से इस समस्त भूमण्डल को रथ की तरह चलाते हैं आपका मत हम लोगों के कल्याण के लिए हो, हम लोग मित्र के समान आपका संसर्ग सदा चाहते हैं ।"

किञ्च- ऋग्वेद मं. २ अ. ६ सूक्त ३० । अर्हन्विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरुप । अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्रत्वदस्ति ॥१०॥

टीका - हेऽर्हन् भवान् धर्मरुपबाणान् सदुपदेशरुपं धनुरनन्त-ज्ञानादिरुपाण्याभूषणान्यपि बिभर्ति ससारिणांरक्षकोऽपि भवति कामक्रोधादि-शत्रुभ्यो भयङ्करोऽपि भवति भवता समानोऽन्य कोऽपि बलवान्नास्ति किलेति।

अर्थ - ऋगवेद के मण्डल २ अध्याय ४ सूक्त 30 में लिखा हुआ है कि हे अर्हन् आप धर्म रुप बाणों को, उत्तम उपदेश रुप धनुष को अनन्त ज्ञानादि रुप आभूषणों को धारण करते हो, संसारी लोगों के रक्षक हो, एवं काम क्रोधादि-शत्रुओं को भगाने वाले भी हो । आपके समान दूसरा बलवान् नहीं है, इत्यादि ।

अपिच - ऋग्वेद मण्डल ५ अध्याय ४ सूक्त ५२ । अर्हन्ता ये सुदानवो नरो असामिशवसः। प्रयज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्य ॥५॥

टीका - भगवानर्हन् सर्वज्ञोऽनन्तदानदायकश्च भवति तस्य पूजकानां पूजा देवैरपि क्रियते ।

अर्थ - अर्हन्त भगवान् सब बातों के जानने वाले सर्वज्ञ और अनन्त दान के देने वाले होते हैं । उनके पुजारियों की पूजा देव लोग भी करते हैं । ऐसा ऋग्वेद के मण्डल पांच, अध्याय चार के सूक्त बावन में लिखा हुआ है ।

तथैव - ऋग्वेद मण्डल ५ अ. ६ सूक्त ८६ । तावृधन्ता वनु द्यून्मर्ता यदेवा वदभा। अर्हन्ता चित् पुरोदधेऽशेव देवा वर्वते ॥५॥

टीका - समुद्रवत् क्षोभरहितादर्हतो ज्ञानांशमवाप्य देवाः पुनीता भवन्ति।

अर्थ - ऋग्वेद के मण्डल पांच अध्याय छह के सूक्त छियासी में इस प्रकार लिखा है कि - समुद्र सरीखे क्षोभ रहित होने वाले श्री अरहन्त भगवान से शिक्षा पाकर ही देव लोग पवित्र बनते हैं।
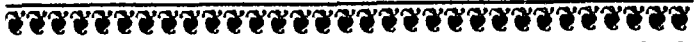
अन्यच्च - ऋग्वेद मण्डल २ अध्याय ११ सूक्त ३ । इडितोऽग्ने सनसानो अर्हन्देवा न्यक्षि मानुष्यात् पूर्वो अद्य। स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो वर्हिषदं यजध्वं ॥३॥

टीका - हेऽग्निदेव ? अस्यां वेद्यां सर्वेभ्यो मनुष्येभ्य: प्रथमं तावदर्हन्तमेव मनसा पूजय दृक्पथमानय । ततस्तस्याऽऽह्वाननं च कुरु, पवनदेवाच्युत देवेन्द्रदेवादिवदेतस्य पूजनं कुरु ।

अर्थ - ऋग्वेद के मण्डल २ अध्याय ११ सूक्त ३ में लिखा है- हे अग्निदेव, इस वेदी पर सब मनुष्यों से पहले अर्हन्तकी ही पूजा करो, उनके दर्शन करो, फिर उनका आह्वानन करो, पवनदेव और अच्युतेन्द्र देवादि की भांति उनकी पूजा करो ।

एवं च- ऋग्वेद मण्डल ५ अध्याय १ सूक्त ७ । कुत्रचिद्यम्य समृतौरण्वानरो नृषदने । अर्हन्तश्चिद्य मिन्धते सञ्जनयन्ति जन्तव: ॥२॥

अपिच - ऋग्वेदमण्डल ७ अध्याय २ सूक्त १८

द्वे नप्तु देववत: शते गोर्द्वा रथा वधू मन्ता सुदास: ।

अर्हन्नग्ने पै जवनस्य दानं होतेव सद्म मर्ये मिरेभन् ॥२२॥

इत्यर्हत: स्मरणं वेदे भूरिश: समायातं ।

इस प्रकार वेदों में अर्हन्त का स्तवन बहुत है ।

तथैवार्हतां मध्ये द्वाविंशस्यारिष्टनेमेर्वर्णनं किलाथर्वणवेदेऽस्ति तावत् ।

अर्थ - इसी प्रकार बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि का वर्णन अथर्वण वेद में है -

त्यमूषु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानां ।
अरिष्टनेमि पृतनजिमाशु स्वस्तये ताक्ष्यीमिहाहुवेम् ॥१॥

अथर्वण काण्ड ७ अध्याय ८ सूक्त ८५ ।

टीका - देववाजिसदृशा वाजिनो यस्य रथस्य तद्रथवाहकोऽरिष्ट-नेमिरस्माकं कल्याणं करोतु वयं तस्यास्मिन् यज्ञे समाह्वाननं कुर्मः ।

अर्थ - स्वर्गीय घोड़ों सरीखे घोड़े जिस में जुते हुए हैं उस रथ को चलाने वाला अरिष्टनेमि भगवान् हमारा कल्याण करें, हम लोग उनका इस यज्ञ में आह्वानन करते हैं । ऐसा अथर्वणकाण्ड ७ अध्याय ८ सूक्त ८५ में लिखा है ।

तवां रथं वयमद्या हुवे मस्तो मैरश्विना सुविताय नव्यं अरिष्टनेमि परिद्यामि यानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानं ॥१०॥

अथर्वणकाण्ड २० अध्याय ९ सूक्त १६३

टीका - सूर्यस्येवाकाशे विहरतः पृथुलतरघोटकैर्वाहमाने च रथे विद्यामये विराजमानस्यारिष्टनेमेराह्वाननं कुर्मः ।

अर्थ - बड़े बड़े घोड़ों के द्वारा खैंचे जाने वाले विद्यामय रथ में विराजमान होने वाले और सूर्य के समान आकाश में घूमने वाले श्री अरिष्टनेमि भगवान का हम आह्वानन करते हैं ।

**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।**

यजुर्वेदाध्याय २५ सं. १

इत्यत्रेन्द्रवत्सूर्यवद् वृहस्पतिवच्चारिष्टनेमिरपि भद्रं तनोत्विति कथितम् ।

अर्थ - यजुर्वेद के इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा हुआ है कि सूर्य, इन्द्र और वृहस्पति की तरह से भगवान अरिष्टनेमि भी हम लोगों का कल्याण करे ।

किञ्चार्हतामाद्यस्यर्षभदेवस्य तीर्थकृतो माहात्म्यन्तु पुनरपूर्वमेव यस्मै किल श्रीमद्भागवते नमस्कारश्च कृत आसीत् -

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तवुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक
माख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै । १९ अ. ६

अर्थ - अर्हन्तों में इस युग समूह की अपेक्षा से सबसे पहले अर्हन्त श्री ऋषभदेव तीर्थंकर का माहात्म्य तो कुछ अनोखा ही है जिसके लिये श्रीमद्भागवत के छठे अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में नमस्कार किया गया है । कहा है कि जो बार बार अनुभव में आने योग्य इन सांसारिक विषय भोगों में अभिलाषा रहित हो चुका था और चिरकाल से सोई हुई बुद्धि वाले अर्थात् भूले हुये दुनियां के जन समूह पर जिसका वचन के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता ऐसी अपनी दया वृति द्वारा जिसने लोगों को कल्याण के मार्ग में लगाया था, उस भगवान ऋषभदेव के लिये नमस्कार हो ।

श्रीमद्भागवत एव गदितं यत्किलर्षभ एवं तपस्यां कृत्वा परमहंसा-नामग्रणीत्वमङ्गीकृतवानिति । यथा-

नाभेरसा वृषभ आस सुदेवसूनु ।
यों वै चचार समदृग्दृढयोगचर्य्याम्।
यत्पार्महंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्ग ॥२०॥

अर्थ - श्रीमद्भागवत में ही यह भी लिखा है कि श्रीऋषभदेव ने ही तपस्या करके परमहंस मार्ग को प्रगट किया । जैसा कि लिखा है-

ये श्रीऋषभदेव महाराज नाभिराजा के उत्तम पुत्र हो गये हैं, जिन्होंने कि साम्यवाद को अपना कर अर्थात् शत्रु मित्र, तृण, कञ्चन, एवं जंगल और नगर में एक सी बुद्धि को रखते हुये उत्तम से उत्तम योगाभ्यास किया था, जिस योगाभ्यास को ऋषि लोग परमहंस अवस्था कहते हैं। उस अवस्था को धारण कर वे श्रीऋषभदेव भगवान स्वस्थ, इन्द्रिय विजयी और परिग्रह-रहित हो गये थे।

वर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुभगवान् परमर्षिभिः प्रसादतो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान्दिशतुकामो वातरशनानां श्रवणानामृषी-णामूर्ध्वमन्थिन्या शुक्लया तन्वाऽवततार।

(श्रीमद्भागवताध्याय ३ श्लोक २०)

अर्थ - उसी समय में विष्णु भगवान् महर्षि लोगों के द्वारा प्रसन्न हो जाने से नाभिराजा की इच्छा को पूरी करने की इच्छा से उसके अन्तःपुर में मरुदेवी महारानी की कूख में, वायु ही है वस्त्र जिनके, या करधनी जिनकी ऐसे दिगम्बर महर्षियों के धर्म को प्रगट करने की इच्छा से खूब ऊँची और श्वेत वर्ण वाली शरीर लता को लेकर अवतरित हुए।

एतस्य महात्मनो महनीयस्यर्षभदेवस्य तपस्या-माहात्म्यात् दशयोजनपर्यन्तसुगन्धदायी पुरीषः समभूदिति च कथितमस्ति यत् तस्य हयः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजन समन्तात्सुरभिं चकार ॥३६॥

अर्थ - इस परमादरणीय महात्मा ऋषभदेवजी की तपस्या के बल से उनकी विष्टा में भी ऐसी गन्ध हो गई थी जो कि दस योजन तक चारों ओर की वायु को सुगन्धित कर देती थी।

अस्यर्षभावतारस्य प्रशंसा मार्कण्डेयपुराण-कूर्मपुराणाग्निपुराणवायु महापुराण-विष्णुपुराण-स्कन्धपुराण-शिवपुराणादिषु च वर्तते किल यस्यानुयायिन आर्हता भवन्ति यमनुस्मृत्य च परमहंसपदवीमनुभवन्ति महात्मानो यां सकललोकश्ला-घनीयामवस्थामवाप्तः स महात्माप्यस्ति।

अर्थ – इस ऋषभावतर की बड़ाई मार्कण्डेयपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, वायुमहापुराण, विष्णुपुराण, स्कन्धपुराण, शिवपुराण आदि में भी लिखी हुई है जिसके कि अनुयायी जैन लोग होते हैं और उन्हें ही आदर्श मानकर महापुरुष परमहंस अवस्था को प्राप्त होते हैं । सब लोगों के द्वारा प्रशंसा योग्य उसी परमहंस दशा को वह महात्मा भी प्राप्त हो रहा है ।

घण्टा - अस्ति चेदस्तु किन्तेन । स साधुर्वयन्तु गृहस्थाः, किं तस्य कथयाऽस्माकं सिद्धिः । तस्य मार्गो योगस्त्यागश्चास्माकन्तु संयोगो भोगोऽपि चेति महदन्तरम् ।

आत्मकर्तव्यविस्मृत्या परकार्यकरो नरः ।
सद्यो विनाशमायाति कीलोत्पाटीव वानरः ॥१३॥

अर्थ - यह सब सुनकर घण्टा बोली - अस्तु वह परमहंस है तो हमें इससे क्या प्रयोजन । वह साधु है, हम लोग गृहस्थ हैं। उसकी बात से हमलोगों का क्या कोई काम चल सकता है। उसका मार्ग और हम लोगों का मार्ग ही परस्पर विरुद्ध है । उसका काम है त्याग करना और योग अर्थात् ध्यान धरना । किन्तु हम लोगों का काम है संयोग लोगों से मेल करना अनेक तरह की चीजें जुटाना और भोग भोगना । उसके काम में और हमारे काम में बड़ा अन्तर है । जो आदमी अपने कर्तव्य कार्य को भूलकर औरों के करने योग्य कार्य करने में तत्पर होता है वह कील को उखाड़ने वाले बानर की भांति शीघ्र ही मरता है ।

मृगसेनो जगाद - कथमेवमेतदिति कथनीयमास्ते प्रिये ।

अर्थ - मृगसेन बोला - यह किस प्रकार से है, सो हे प्यारी खुलासा कहो ।

घण्टा - एकदैकस्य काष्ठफलकमुस्तस्योपरि गत्वा कोऽपि मर्कट-स्तदन्तर्गतं कीलकमुत्खातुमुद्यतोऽभूत् । किन्तु यावत्स शङ्कुमुत्कोचयामास तावत्तत्काष्ठाभ्यन्तरतो गत्वाऽण्डकोषविमर्दनभावेन तत्कालमेव मृत्युमाससाद। तथैवास्माकमपि भवत्प्रसादेन क्षुधातुराणां गतिर्भवितुमर्हतीति।

अर्थ - घण्टा बोली - एक बार एक बन्दर किसी चीरे हुए पटियों के समूह रुप लकडे पर जा बैठा, वह उसके बीच में लगाये हुए कीले को उखाड़ने लगा । किन्तु ज्यों ही वह कीला निकला त्यों ही उस बन्दर के अण्डकोष उस काठ के अन्तराल में फंस गये और वह बन्दर उसी समय मर गया । बस अब इसी प्रकार आपके प्रसाद से हम लोगों को भी भूखों मरना पड़ेगा ।

मृगसेनः प्रत्याह - हे भामिनि, किम्मया किलाकरणीयमेव कृतम्, किन्तावदहिंसाधर्मो मनुष्यमात्रस्यापि कर्तव्यभावं नासादयति ? यथा किलोक्तम् -

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मः प्रवरोऽस्ति भूमौ न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥२६॥

पापानुबन्धिनावर्थकामौ तनुमतो मतौ ।
धर्म एवोद्धरेदेनं संसाराद्गहनाश्रयात् ॥२५॥

अर्थ - घण्टा की बात सुनकर मृगसेन ने कहा हे प्यारी, क्या मैंने बिल्कुल ही न करने योग्य काम किया है । क्या अहिंसा धर्म का पालन करना मनुष्य मात्र का काम नहीं है ? हमारे पूज्य पुरुषों ने तो कहा है -

जो मनुष्य होकर के धर्म, अर्थ, और काम इन तीन पुरुषार्थों को नहीं साधता उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है । उन तीनों में भी धर्म पुरुषार्थ मुख्य माना गया है, उसे तो भूलना ही नहीं चाहिये। शेष तीनों में अगर गलती हो जाय तो हो भी जाय । क्योंकि अर्थ और काम इन दोनों पुरुषार्थों की भी जड़ धर्म पुरुषार्थ ही है ।

दूसरी बात - अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ ये दोनों तो पापानुबन्धी हैं इन दोनों के सम्पादन में मनुष्य को कुछ न कुछ पाप भी करना ही

पड़ता है । किन्तु धर्मपुरुषार्थ ही एक ऐसा है जो निर्दोष होकर इस प्राणी को दु:खों से भरे हुए इस संसार से पार उतारने वाला होता है ।

घण्टा (शिरो धुनित्वा) जगाद- हे भगवन्, सद्बुद्धिं देहीदृशेभ्यो धर्मधर्मेतिरटनकारकेभ्य: । इदमपि न जानन्ति धर्मान्धा: यत्किल धर्मपालनं शरीरस्थितिपूर्वकम्, शरीरस्थितिश्च वृत्त्यधीना । वयन्तु गृहस्था: साधवोऽपि तनुस्थित्यायाहारमन्वेषयन्त: प्रतिभान्ति, तदलाभे तेऽपि कति न पथभ्रष्टा जाता:। श्रीमतो भगवतस्तस्यर्षभदेवस्यापि काले तेन सार्द्धं दीक्षिता राजानो भुक्त्यलाभादेवोत्पथमवाप्ता इति श्रूयते -

आद्या क्रिया सूदरपूर्तिरस्ति भक्त्यादयोऽत: पुनरस्ति देव ।
रिक्तोदरस्य व्ययते यतश्चिद्बुभुक्षित: स्वापमियान्न कश्चित् ॥१६॥

दृश्यन्ते भूरिशो लोके कला मानवसम्मता:
आद्यमाजीवनं तेषु जीवोद्धारकथा पुन: ॥१७॥

अर्थ- घण्टा ने शिर धुनते हुए कहा- हे भगवन्, इन धर्म धर्म की रट लगाने वाले लोगों को भी थोड़ी सद्बुद्धि दीजिए । ये धर्मान्ध लोग यह भी नहीं जानते कि धर्म का पालन करने के लिये भी शरीर को बनाये रखने की आवश्यकता है और शरीर की स्थिति वृत्ति के अधीन होती है उसको बनाये रखने के लिए आजीविका आवश्यक है । हम लोग तो गृहस्थ हैं हम लोगों की तो बात ही क्या, साधु लोग भी - जो कि और सब कुछ के त्यागी होते हैं वे भी शरीर की स्थिति के लिये आहार लेते हुए देखे जा रहे हैं। आहार न मिलने से ही कितने ही साधु लोग भ्रष्ट हो गये हैं । श्रीमान् भगवान् ऋषभावतार के ही समय में जो राजा लोग उनके साथ दीक्षित हुए थे वे सब भोजन न मिलने से ही तो उन्मार्गगामी बने थे जैसा कि शास्त्रों में लिखा हुआ है ।

हे नाथ, बात तो यह है कि पुरुष की जितनी भी क्रियाएं हैं उनमें सबसे पहिला कार्य पेट पालना है भगवद् भक्ति आदि और सब काम

उसके बाद में याद आया करते हैं । भूखे आदमी की तो बुद्धि ही ठिकाने नहीं रहती । अतः ऐसा कभी न हो कि किसी को भी भूखा सोना पड़े।

कला वहत्तर पुरुष की उनमें दो सरदार ।
प्रथम जीव की जीविका, दूजो जीव उद्धार ।।

मृगसेनः प्रतिजगाद - यदि कान्ते, स्विदियान्ते विचारस्तर्हि श्रृणु किमियं वृत्तिर्याऽस्माभिरेकान्तेन परसत्त्व संहारेणैव सम्पाद्यते।

कृष्यादिभिर्वृत्तिरवाप्तनीतिर्यत्रात्मनोऽन्यस्य च नैव भीतिः ।
नृशंसता वञ्चकता ठकत्वं याञ्चा च वृत्तेर्विपरीतकृत्त्वम् ॥१८॥

आजीवनं यन्निगदाभि नाम तदङ्गभृजीवननाशधाम ।
समस्तु नस्तूत्तरमेकमेव लग्नो जलेऽग्निः किमु वच्मि देव ॥१९॥

अर्थ - घण्टा की बात सुनकर मृगसेन बोला - हे प्यारी, जैसा तू कहती है वैसा ही यदि मान लिया जाय कि आजीविका का विचार तो मनुष्य को करना ही चाहिए । तो भी सुन - मैं पूछता हूं कि अन्य जीवों को मारना ही जिसका आधार है ऐसी क्या वह आजीविका वृत्ति है जिसको कि हम लोग करते चले आ रहे हैं ।

खेती आदिक जीविका जहां स्व-पर उपकार ।
मृगया चोरी वञ्चना आदिक दुष्ट विचार ।।
जीव-घात करिये जहां फिर आजीवन होय ।
यह तो ऐसी बात है पावक ही हो तोय ।।

आसमन्ताज्जीवनं यत्र- जहां प्राणिमात्र का जीवन हो वही आजीविका है ।

घण्टा - हे भगवन् कृष्यादिषु प्राणिवधो नैव भवतीति तादृक् युत्किल वर्षासु सतीष्वपि भूतलं शुष्क मेव । कृषिकर्मणि तु प्रत्युत प्रचुरतयैव प्राणि-प्रणाशः सम्भवति-

कर्षणे खातसम्पात-करणे सिञ्चने पुनः ।
लवने वपने चास्ति प्राणिहिंसा पदे पदे ॥२०॥

धान्यमस्तु यतो विश्व- समितिः स्यादितीयती ।
कृषकस्य प्रीतिर्हि सम्भवेद्भद्रदेशिका ॥२१॥

अर्थ - घण्टा कहने लगी - हे भगवन् मानों खेती आदि में हिंसा होती ही नहीं । यह बात तो ऐसी हुई जैसे वर्षा खूब जोर की हुई किन्तु जमीन सूखी ही रही । खेती करने में तो और भी ज्यादा हिंसा होती है, उतनी तो हम लोग कभी नहीं करते हैं । जमीन के जोतने में, उसमें खात डालने में, पानी सींचने में एवं खेती पक कर तैयार हो जाने पर उसके काटने और बोने आदि में तो पग-पग पर हिंसा है । हां, कृषक की यह भावना रहती है कि मेरी खेती में खूब धान्य पैदा हो जिससे कि धान्य सस्ता हो और सब जीव सुखी रहें । बस, उसकी यह भावना ही उसे उस पाप से बचाने वाली होती है ।

मृगसेनः प्रतिवदति स्म- कर्षणेऽपि हिंसा भवति चेद्भवतु, किन्तु न कृषीवलः करोति वयन्तु कुर्म इत्येतदत्यन्तमन्तरमस्ति ।

यदपि व्याप्रियतेऽनुचरेण यथोद्यमं तदुपायकरेण ।
लाभालाभकथास्तु च भर्तुः शिरसि सम्पतेत् फलं हि कर्तु ॥२२॥

अर्थ - मृगसेन ने जबाब में कहा कि ठीक है, खेती करने में भी हिंसा होती है । किन्तु किसान हिंसा करता नहीं है उसके काम में हिंसा होती है । हम लोग तो हिंसा करते हैं यही एक बड़ा भारी अन्तर है । देखो - किसी भी प्रकार के काम-धन्धे में उसका स्वामी भी काम करता है और नौकर भी । प्रत्युत नौकर और भी लगन के साथ काम किया करता है किन्तु उस काम के नफा-नुकसान का भागी तोस्वामी ही होता है ।

घण्टा - तदा पुनर्भवतः साधोश्च विचारेणास्माभिर्बुभुक्षितैरेव मर्तव्यमिति नायं धर्मोऽस्मादृशामनुकूलतया प्रतिभाति । सङ्गच्छतु साधुसन्निधिमेव भवान् किमधुनास्माभिः प्रयोजनमिति सम्प्रतर्ज्य मृगसेनं बहिष्कृत्य द्वारस्यार रसंगठनपूर्वकमर्गलप्रदानमपिचकार ।

अर्थ - मृगसेन की बात सुनकर घण्टा तमक कर बोली कि- फिर आपके और साधु के कहने में तो हम लोगों को भूख के मारे तड़फ तड़फ कर ही मर जाना चाहिये । यह ऐसा धर्म हम लोगों को तो अच्छा नहीं लगता । जाइये आप अपनी तशरीफ उन साधुजी के पास ही ले जाइये, हम लोगों से अब आपका क्या प्रयोजन रहा । इस प्रकार ताड़ना देकर और मृगसेन को बाहर निकाल कर उसने दरवाजे के किवाड़ बन्द कर लिये और आगल लगा दी ।

मृगसेनः - एतदभूतपूर्ववृत्तान्तमवलोक्यैवं मनसि चिन्तयामास ।

अर्थ - जो बात जीवन भर में पहले कभी नहीं हुई ऐसी इस अपूर्व बात को देख कर मृगसेन अपने मन में नीचे लिखे अनुसार विचार करने लगा -

अहो ममेहानुभवोऽद्य जातः स्त्री वा तुगम्बा भगिनी च तातः ।
सर्वे जनाःस्वार्थतयाऽनुरागमायान्त्यमुषिमन्न मनागिवागः ॥२३॥

अर्थ - अहो, आज मुझे यह अच्छी तरह से मालूम हो गया कि इस संसार में क्या स्त्री, क्या लड़का, क्या माता, क्या बहिन, क्या बाप क्या और कोई, सभी लोग अपने अपने मतलब को लेकर प्रेम किया करते हैं इसमें जरा भी भूल नहीं, सही बात है ।

या नाम नारीति विभर्ति मे साऽरिभावमायात्यधुना विशेषात् ।
विचारतोऽहं परिवारिलोके पुनः पदेनैव तथावलोके ॥२४॥

अर्थ - देखो जो नारी (जो कभी वैरी नहीं होती) इस नाम को धारण करने वाली यह मेरी निज औरत ही जब इस प्रकार स्पष्ट रुप

से बैरी का काम कर रही है तो फिर और परिवार के लोगों की तो कथा ही क्या। उनका तो नाम ही परिवार के लोग अर्थात् चारों ओर से जकड़ रखने वाले ऐसा है।

येषां कृते नित्यमनर्थकर्तुरह्यैव किञ्चिद्विपरीतभर्तुः ।
जनैरुपादायि विरुद्धभाव इवाशु वंशैर्विपिनेऽपि दावः ॥२५॥

अर्थ - जिनके लिये मैं प्रतिदिन अनेक तरह के अनर्थ करता रहा, पाप कमाता रहा, उनके लिये आज एक जरा सा विपरीत काम किया, उसी में लोग इतने विरुद्ध हो गये। एकाएक मुझे बाहर कर उन्होंने ही ऐसा परिचय दिया जैसे कि वन के बांस ही वन को जलाते हैं।

सदेह देहप्रतिपत्तयेऽहं तनोमि चित्तं बहुपापगेहम् ।
तदङ्गनाऽहो ध्रियते यमेन तृणव्रणालीव समीरणेन ॥२६॥

अर्थ - इसी प्रकार जिस शरीर को लालन- पालन कर मोटा ताजा बनाये रखने के लिये मैंने निरन्तर मन लगाकर अनेक जाति के बुरे कर्म किये, वह यह शरीर भी तो एक न एक दिन काल के द्वारा नष्ट किया जाने वाला है, जैसे कि हवा के द्वारा तिनकों का ढ़ेर।

समस्ति शाकैरपि यस्य पूर्तिर्दग्धोदरार्थे कथमस्तु जूर्तिः ।
प्राणिप्रणाशाय विचारकर्तुः प्रवेपमानस्य च नाम मर्तुम् ॥२७॥

अर्थ - जब कि यह पापी पेट शाक-पिण्ड के द्वारा भी भरा जा सकता है तो फिर इसके लिये जो स्वयं विचारवान् है और जो मरने के नाम को सुनकर भी कांपने लग जाता है वह अन्य प्राणियों का संहार करने में कैसे प्रवृत्त हो सकता है। कभी भी नहीं हो सकता।

स्वदेहगेहादिषु मुह्यता मया वृथा कृतं जीवनमात्मपर्ययात् ।
परिच्युतेनेत्यथ साधुसङ्गमादुपागता किं परिमुच्यतां क्षमा ॥२८॥
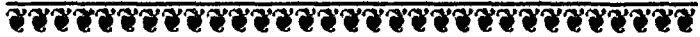
अर्थ - अपने आपके स्वरुप से दूर हटकर इस शरीर और घर कुटुम्ब आदि में मोहित होते हुए मैंने अपना इतना जीवन व्यर्थ ही खो दिया। अब बहुत ही कठिनता से साधु महाराज के समागम से जो सहिष्णुता प्राप्त हुई है, क्या उसे छोड़ देना उचित है ? नहीं कभी नहीं ।

ययुर्यदा यान्ति ममासवो ननु जनुष्मता सन्भ्रियते मुहुस्तनुः ।
सुदुर्लभ सन्मनुदेशितं व्रतं कलङ्कपङ्काय किलोपसंहृतम् ॥२९॥

अर्थ - यदि मेरे प्राण भी जाते हों तो चले जावें, कोई हानि नहीं है क्योंकि जन्म मरण करने वाला संसारी प्राणी यों ही जन्मता और मरता रहता है, बार बार शरीर धारण करता है । किन्तु यह सज्जन-शिरोमणि गुरु महाराज का दिया हुआ व्रत यदि छोड़ दिया जाता है तो इस जन्म में कलङ्क का और उत्तर जन्म में पाप का कारण होता है ।

इत्येवं विचारपरिपूर्णस्वान्तः स्वस्यान्तरङ्गेऽजीव शान्तः पुनः पुनः संस्मृत-साधुवृत्तान्तः संसारस्वरुपानुपेक्षणक्षणसंलग्नान्तस्तया भोगोपयोगो-चितविचारतः क्लान्तः शनैर्गत्वा गृहीत शून्यदेवकुलोपान्तः प्रातरारभ्य दिनान्तपर्यन्त-मनवरकृतपरिश्रमतया श्रान्तस्तत्रैकान्तमासाद्य विश्राममादातुं किल प्रलम्बमानजानुयुगान्तस्सन् दण्डवन्निपपात ।

अर्थ - इस प्रकार जिसके मन में विचार उत्पन्न होते जा रहे हैं जिससे कि मन शान्त होता चला जा रहा है, जो कि बार बार साधु महाराज की बात को याद कर रहा है और संसार की दशा का विचार करने में लगा हुआ होने से आज तक भोगों में बिताये समय के विचार को लेकर जिसे ग्लानि उत्पन्न हो रही है, ऐसा वह मृगसेन धीवन धीरे धीरे जाकर किसी एक सूनी धर्मशाला में पहुँचा । प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक अथक परिश्रम करने से थक तो चुका ही था इस लिये वहां पर एकान्त पाकर विश्राम करने के लिये अपनी दोनों टांगे फैलाकर एक दण्डे की तरह सीधा लेट गया ।

तावतैव वल्मीकतो विनिर्गतेन दन्दशूकेन विकरालकालप्रतिमूर्तिना दृष्टिमात्रत एव भयदायकेन वह्निज्वालामिव विस्तृतां जिह्वां मुहुरुच्चालकेन कथमपि पशुपतिकण्टतो निपतनमासाद्येदानीं पुनस्तमेवान्वेष्टुमिवोद्येतन व्रतभ्रष्टस्यान्तःकरणेनेवातिशया मलेन कुलटाजनविचारेणेवात्यन्तकुटिलेन चिरविरहसमागतदम्पति प्रस्तुतो दन्तेनेव प्रलम्बमानेन नूतनदुर्गमभितः कृतखातेनेव विषभरितेन दष्टः सन्दीर्घनिद्रामवाप, प्राप चैतद्वालकरुपतामिदानीं सोमदत्तनाम्ना ।

अर्थ - इतने ही में जिसको देखते ही डर लगे ऐसा काल के समान विकराल मूर्ति वाला, अग्नि की ज्वाला के समान फैलती हुई अपनी लम्बी जीभ को बार बार बाहर निकालने वाला, मानो महादेव के कण्ठ में से किसी कारण-वश खिसक पड़ा हो, अतः अब फिर वापिस उसी की खोज करने में लगा हुआ, अपने किये हुए उचित प्रण को भी तोड़ डालने वाले आदमी के अन्तःकरण के समान काला, व्यभिचारिणी स्त्री के मन के समान अत्यन्त वक्रता धारण करने वाला, परस्पर बिछुर कर बहुत काल के बाद मिलने वाले स्त्री-पुरुषों की बात के समान लम्बा, नवीन किले के चारों तरफ बनाई हुई खाई के समान विष का भरा एक सांप अपने बिल में से निकलकर उसे खा गया, जिससे कि वह मर गया । वही आकर यह बालक हुआ है जिसका कि नाम सोमदत्त है ।

घण्टा - किञ्चित्कालान्तरसमुपशमित रोषा सती स्वमनसि विचारान्तर मेतादृक् कर्तुमारेभे धिगिदं स्वभावत एव चञ्चलंचित्तम् ।

अर्थ - इधर थोड़ी देर बाद रोष शान्त हो जाने से घण्टा के मन में विचार ने पलटा खाया तो वह सोचने लगी कि धिक्कार हो इस चित्त की चञ्चलता को ।

निर्मुक्तवल्गनमिवोच्चलनं तुरङ्गं स्वैरं निरङ्कुशमिवातिशयान्मतङ्गम् ।
श्रीपञ्जरादरणवच्च विचारपूर्णं चित्तं जनः स्ववशमानयतात्तु तूर्णम् ॥३०॥

अर्थ - देखो यह चित्त बिना लगाम के घोड़े के समान तो उत्पथ में चलने वाला है, निरङ्कुश हाथी के समान बेरोक टोक इधर उधर दौड़ने

वाला है, पींजरे के समान विचारों (पक्षियों की चालों या अनेक तरह के भावों) का घर है, अतः मनुष्य को चाहिये कि शीघ्र ही इसको अपने वश में करले इसे खुला न छोड़े ।

अहो मयापि दौश्चित्यवशीकृत्या महदेवानुचितमाचरितं यत्किल यावद्दिनं श्रान्तोऽपि क्षुधातुरोऽपि धीवरधुरन्धरो निर्दयतया गृहान्निर्घाटितः ।

अर्थ - देखो मैं भी कैसी पागल हो गई कि गुस्से में आकर बहुत ही बुरा काम कर गई । मैंने जरा भी विचार नहीं किया और दिन भर के थके हुए भूखे प्यासे धीवरों के मुखिया अपने पति को निर्दयता के साथ घर से बाहर निकाल दिया ।

स किलास्यां व्यसनिनां चित्त वृत्ताविवान्धकारपूर्णायां लोकायितकस्य विचारधारायामिव भूतचेष्टाबहुलायां विकटाटव्यामिव जनसंचार रहितायांसांख्य-सम्पत्ताविवोलूकतनयोवितव्याप्तायां सौगतस्य प्रमाणकलायामिव च विचारविरहितायां विनियोग वार्तायामिव दस्यूत्साहस-मर्थिकायां जैनानां सासादनदशायामिव सम्यग्दर्शनस्यापवादधरायां तमिस्रायां क्व किल यास्यति।

अर्थ - वह इस बुरी आदत वाले व्यसनी लोगों के मनसा के समान अन्धकार (अज्ञान व अन्धेरा) वाली, चार्वाक की विचार परम्परा के समान भूतों (पृथिव्यादि पञ्चभूत या व्यन्तरदेवों) की चेष्टा से व्याप्त रहने वाली, एक भयङ्कर वनी केसमान जनसञ्चार से रहित,सांख्यपरम्परा के समान उलूक) तनय (सांख्यों के आचार्य या उल्लू पक्षी) की आवाज को लिये हुये, बौद्ध मतावलम्बियों की प्रमाम-वार्ता के समान विचार (निश्चय या योग्यायोग्य का ध्यान) से भी रहित, विनियाग (विवाही हुई औरत को ब्याह लेना) प्रथा के समान दस्यु (जारज या चोर लुटेरे) लोगों को उत्साह दिलाने वाली, और जैन मत में माने हुए सासादन गुणास्थान की अवस्था के समान सम्यग्दर्शन (यथार्थश्रद्धान तथावलोकन) को नष्ट करने वाली रात्रि में कहां जायेगा, क्या करेगा ?

उडूल्लसत्कीकशदामशस्ता निशा पिशाचीन्दुकपालहस्ता ।
बुभुक्षिताऽऽराऽटतीह भिक्षाः कार्या मया पत्युरतः समीक्षा ॥३१॥

अर्थ - जिसके गले में तारा रुप चमकती हुई हड्डियों की माला पड़ी हुई है, चन्द्रमारुप खप्पर को हाथ में लिये हुये है और जो भूखी है ऐसी यह निशारुप पिशाची भिक्षा मांगने को उतरी हुई है अतः इस भयंङ्कर समय में मुझे भी पति की तलाश जरुर करना चाहिये ।

यतः खलु सोऽस्माकं तारुण्यतेजः समुत्तननाय तरणिरिवोत्तरायणः सर्वदेवानुकूलाचरण-करण-परायणः सुललित-मनोरथलता-पल्लवननिमित्त मम्बुधरायणः पानीयापत्तिपूतनाविनाशनाय नारायणः पाठीनमीनन क्रमकरादिज-लजन्तुभ्यः कारायणः कुतो जगामास्माकं सर्वस्वसारायण इतिप्रत्येवेक्षितुं तदनुसरण क्रमेणैव गत्वा देवस्थानभूमावेकाकिनं पतितं च दृष्ट्वोत्थापयितुमभि वाञ्छन्ती सहसैव परासुतामवाप्तमवलोक्य रुरोद स्वशिरस्ताडनपूर्वकं स्वकृतापराधस्मरणपुरस्सरं चेति ।

अर्थ - क्योंकि वह स्वामी हमारे तरुणता रुपी तेज या सौभाग्य को बढ़ाने के लिये उत्तरायण सूर्य के समान है, हमेशा ही अनुकूल हमारी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाला है इसलिये हमारी मनोकामना रुप वेल को बढ़ाने या पूर्ण करने के लिये मेघ-समूह समान है, पानी से होने वाली आपत्ति रुपी पूतना राक्षसी को नष्ट करने के लिये कृष्ण नारायण सरीखा है, पाठीनाम की मछली, घड़ियाल और मगरमच्छ आदि जल-जन्तुओं के लिये जेल खाने के समान वश करने वाला है इसलिये वह हम लोगों के लिये सर्वथा आदरणीय है । इस प्रकार सोच विचार कर वह धीवरी उसे खोजने के लिए निकली और जिधर को वह गया था उधर को ही वह भी हो ली और उसी देवस्थान-धर्मशाला में जाकर उस अकेले ही को वहां पड़ा हुआ देख कर उठाने लगी । पर सहसा उसे मरा हुआ देखकर और अपनी गलती को याद कर करके सिर कूट कूट कर रोने लगी ।

हाऽस्तं गतो मे व्यवहारसूर्यः नात्रास्त्यहो धीवरकर्मधूर्यः
मयैव मे मूर्धनि वज्रपातः कृतः सुरोध्रे च कुठारघातः ॥३२॥

अर्थ - हाय हाय मेरा सौभाग्य सूर्य आज अस्त हो चुका, आज वह धीवर के कार्य करने में मुखिया यहां पर नहीं रहा, हाय हाय मैंने स्वयं ही अपने सिर पर वज्र गिरा लिया, और एक कल्पवृक्ष को मैंने ही कुल्हाड़ी से काट डाला ।

पुनश्च – **गतं न शोचामि कृतं न मन्ये किंताडनेनाहिपदप्रजन्ये।**
तदुत्तमं यद्व्रतपूर्वकं स ययौ ममानन्दतटाकहंसः ॥३३॥

अर्थ - थोड़ी देर के बाद वह विचारने लगी- जो हो गया सो हो गया, गई बात को याद करने से क्या लाभ, सांप की लकीर को पीटने से क्या हो सकता है, कुछ नहीं । हाँ वह मेरे आनन्द रुपी तलाब का हंस व्रत-पूर्वक मरा, यह भी अच्छा हुआ ।

मयापि तदेव व्रतमादरणीयमास्ते किमिदानीं तरलतरजीवन धारणकरणायान्यजन्तु संहारकरणेनेति यावदेव साऽऽत्ममनसि मनीषा मुदाजहार तावदेव तैनेव नागपतिनाऽऽगत्य सन्दष्टा सती परलोकयात्रां कृतवतीहास्य गुणपालश्रेष्ठिनः सधर्मिण्या गुणश्रियाः कुक्षितो विषाख्याऽवतरितास्तीति किलैतयोः पूर्वजन्मसंस्कार वशतः परस्पर संयोगो भविष्यति ।

अर्थ - मुझे भी वही व्रत ले लेना चाहिए । इस थोड़े से दिन के जीवन के लिये इतर प्राणियों का संहार करना ठीक नहीं है । इस प्रकार उसने अपने मन में विचार किया । उसी समय वही साँप जिसने कि मृगसेन को डसा था, आकर उसे भी डस गया । और वह मर कर यहां इस घर वाले गुणपाल नाम के सेठ की सेठानी गुणश्री की कूख से विषा नाम की लड़की हुई है । इसलिए पूर्वजन्म के संस्कार बल से इन दोनों का संयोग होवेगा ।

यतः किल – अघटितघटनां करोति कर्म प्राणिनां सदाऽऽपदं च शर्म ।
भवतादुचितं चेष्टितं तत आसाद्य जनुर्भूतले सतः ॥३४॥

अर्थ – क्योंकि प्राणियों को जो भी कुछ सुख और दुःख या सम्पत्ति और विपत्ति होती है वह उनके कमाये हुए कर्म के अनुसार ही होती है । जिसका हमको स्वप्न में भी विचार नहीं आता, ऐसी बात भी प्राणियों के पूर्वोपार्जित कर्म द्वारा बहुत ही आसानी से प्राप्त हो जाती है । इसलिए समझदार आदमी को चाहिए कि वह जो कुछ करे समझ सोचकर करे और हर समय अपनी चेष्टा अच्छी रक्खे ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तत्प्रोक्तेऽक्षिमितो दयोदयपदे चम्पूप्रबन्धेऽस्त्ययं
लम्बः श्रीमुनिराजयोरिह मिथः सम्भाषणात्मा स्वयम् ॥२॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर विरचित इस दयोदयचम्पू में दो मुनिराजों की वार्तालाप वाला दूसरा लम्ब समाप्त हुआ।

卐 तृतीयो लम्बः 卐

गुणपालोऽपि यतियुगलस्य वार्तालापमिमं श्रुतवानतस्तस्यान्तः करण माश्चर्यमहार्णवनिमग्नमभूत्-यत्किलैषोऽतिशयान्निःस्वतामापन्नोऽपि शोचनीयाँ दशामितोऽपि समुच्छिष्टाशननिरतोऽपि मम तनुजाया ननु जायतां स्वामीति किन्तु खलुच्छगलोऽपि पञ्चाननतनयाया भर्ता भवितुमर्हतीति ।

अर्थ - गुणपाल सेठ भी उन मुनिराजों की बातचीत को सुन रहा था इसलिए उसका मन आश्चर्य सागर में पड़ गया। उसके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह अति दीन दरिद्र, शोचनीय दशा को प्राप्त हुआ, प्रत्येक की जूठन खा करके पेट पालने वाला, बालक मेरी लड़की का स्वामी हो, यह बात कुछ भी समझ में नहीं आती, क्या कहीं बकरी का बच्चा भी शेर की बच्ची का स्वामी बन सकता है।

किन्तु श्रमणसमुदितमपि पुनरन्यथा भवितुमर्हेदित्यपि किलाका-शकुसुममेव तावत्। यतः किल-

भूमौ न कस्यापि कदाऽऽपदेऽवगच्छन्त्यविच्छिन्नतया यदेव।
तदेव वृत्तं श्रमण वदन्ति ये नित्यसत्यव्रतिनो भवन्ति ॥२॥

अर्थ - किन्तु दिगम्बर महर्षियों की कही हुई बात भी झूठी हो जावे, यह भी आकाश के फूल के समान न होने वाली ही बात है। क्योंकि दिगम्बर महर्षि लोग एकान्त सत्य व्रत के धारक हुआ करते है, वे कभी किसी दशा में भी झूठ नहीं बोलते, वे लोग वही बात कहते हैं जिसे कि अन्य के द्वारा किसी प्रकार से भी अन्यथा न किया जा सके, अपितु नियम से होकर ही रहे।

तदा पुनः किंकर्तव्यमिदानीमस्माभिः किमिह किमपि न कृत्वा यथोदासीनतयैव स्थातव्यमिति किंकर्तव्यविमूढभावेन चिन्तानिमग्नाय तस्मै तन्मनस्कार एवेत्थमुत्तरं दत्तवान्।

अर्थ - तो फिर अब क्या करना चाहिये ? क्या कुछ भी न करके एक उदासीन आलसी आदमी की भांति से चुप रहना चाहिये? इस प्रकार किंकर्तव्य विमूढ रुप से चिन्ता में पड़े हुए उस सेठ को स्वयं उसी के मन ने इस प्रकार उत्तर दिया -

यत्पुरुषनामधारिभिः क्रियते तदेव भवतापि विधातव्यमेव अपायादपेतुं समायं च समालब्धुमुपायो विधीयतामिति सतां-सम्मत मतमस्ति।

अर्थ - जो कुछ पुरुष नामधारी किया करते हैं वही आपको भी करना चाहिए- हानि से बचने और अपने लाभ की बात को प्राप्त करने के लिए हर समय उपाय करना ही चाहिये, यह सज्जनों की मानी हुई बात है ।

यतः खलु - **असम्भवोऽपि सम्भाव्यः सता यत्नेन जायते ।**
श्रूयते हस्ति-हन्तापि शशकेन निपातितः ॥२॥

अर्थ - क्योंकि देखो सत्प्रयत्न असंभव भी संभव हो जाता है । सुना जाता है कि हाथियों के मारने वाले सिंह को भी एक खरगोश ने मार दिया था । उपाय एक ऐसी वस्तु है ।

एकदैकस्मिन् वने मृगारिणा सन्त्रतैर्वनवासिपशुभिर्मिलित्वा केशरिणे क्रमेणैकैकदिने किलैकैकं व्यक्तिं विनिश्चित्य तमपि (केशरिणं) निजसंसदि कृतप्रस्तावनिवेदनेन प्रसाद्य तथैव कर्तुमारब्धमिति कतिचिद्दिनानन्तरमेकस्य वृद्धशशकस्य समयः समुपस्थोऽभूत् ।

अर्थ - एक बार एक वन में सिंह के सताये हुए वन-पशुओं ने मिलकर ऐसा विचार किया कि सिंह के लिये एक एक दिन एक एक पशु बारी-बारी से अपने में से चला जाया करे तो अच्छा हो, औरों को हैरान न होना पड़े, अतः अपनी इस सभा में पास हुए प्रस्ताव को सिंह से भी कहकर उससे भी स्वीकृति ले ली और वैसा ही करने लगे । कुछ दिन के बाद तक बूढे खरगोश का नम्बर आया ।

तत्र मरणादधिकं किमपि भवितुं नार्हतीति मनसि निश्चित्य विघोरङ्काभिधः शनैः पादविक्षेपेण बहु विलम्ब्य मृगेन्द्रस्याग्रे गतवान् ।

अर्थ - वहां उस खरगोश ने सोचा कि अब मरने से अधिक तो कुछ होना नहीं है इस प्रकार अपने मन में विचार कर वह धीरे धीरे पैर रखकर बहुत देरी से उस सिंह के पास पहुंचा ।
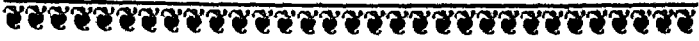
सिंह: सकोपमाह-रे जाल्म ? कुतो विलम्बं कृतवानिति ।

अर्थ - सिंह ने गुस्से में आकर कहा कि - रे दुष्ट, इतनी देर कहां पर लगाई ।

शशो वदति स्म- स्वामिन् श्रूयतां पथि समागच्छतो ममान्येनैकेन सिंहेन सार्द्ध समागमो जातः । तस्मिन् मां खादितुमुद्यते सति घटिकानन्तरं पुनः प्रतिमिलितुं शपथपूर्वक निवेद्येहागतेऽस्मि किलेति किं कर्तव्यम्।

अर्थ - खरगोश बोला - महाराज ! सुनो मार्ग में आते हुए मेरा एक दूसरे सिंह से समागम हो गया । वह जब मुझे खाने लगा, तो मैं आपसे एक घड़ी के बाद में नियम से वापिस आकर मिलूंगा, अभी आप मुझे छोड़िये, इस प्रकार सौगन्धपूर्वक उससे प्रार्थना करके आया हूं । अब क्या करना चाहिये ?

सिंहः - सरोषं क्वाऽस्ति सदुरुद्योगीति शशस्य पृष्ठतो गतवान्।

अर्थ - सिंह-गुस्सा करके कहां पर है वह अन्यायी, ऐसा कह कर उस शशक के पीछे पीछे हो लिया ।

शशः कस्यचित्कूपस्य तीरे स्थित्वा तस्यैव प्रतिविम्बं जले निपतित-मुपादर्श्यायमस्तीत्युक्तवान् ।

अर्थ - खरगोश ने किसी कुए के किनारे पर जाकर उसके जल में पड़ते हुए प्रतिविम्ब को दिखला कर कहा देखो यह है ।

तदा नादं कृतवति सिंहे प्रतिनादोऽपि कूपमध्यादागतस्ततः कूपे निपत्य तेनात्मविनाशः स्वयमेव कृत इत्येवं भद्रमेवाभूत्। ततः कृतिना स्वेष्टसम्पत्तये समुपायः कर्तव्य एव ।

अर्थ - तब सिंह ने दहाड़ लगाई । कुए में से उसकी प्रतिध्वनि आई । इस पर उस सिंह ने हाँ, इसमें अवश्य सिंह है, ऐसा विचार कर कुए में कूद कर अपना विनाश स्वयं ही कर लिया । यह बात सब के भले के लिए हुई । अतः समझदार को चाहिए कि अपने वाञ्छित को सिद्ध करने के लिए उपाय अवश्य करे ।

किञ्च - कस्यापि पितरि व्याधिते सति नैमित्तिकेन चायमनेनाऽऽमयेन मृत्युमेव यास्यतीति निगदिते सत्यपि तत्तनयेन तस्य चिकित्सा नैव कार्या किं खलु । नांह। किन्तु यथाशक्ति प्रयतितव्यमेव ।

अर्थ - इसी तरह मान लो एक आदमी का बाप बीमार पड़ गया और ज्योतिषी महाशय ने भी कहा कि यह इसी बामारी से मर जावेगा, बचेगा नहीं । अब बताओ क्या वह बाप का इलाज नहीं करे ? नहीं, बल्कि उसे शक्ति भर और भी प्रयत्न करना चाहिए।

उदर्काङ्के यदस्ति स्यान्नोचितं शोचितुं सता ।
यथेष्टं हृद्वचः कायक्रिया कार्यैव भूतले ॥३॥

अर्थ - भविष्य की गोद मे ं जो कुछ है उसका विचार करना समझदार आदमी का काम नहीं, किन्तु इस दुनियांदारी में आकर अपने भले के लिये मन वचन काय से प्रयत्न करना ही उसका काम है ।

ततः केनाप्युपायेनेदानीमेवामुं मारयामीति पुनः कथमवन्ध्यतामनुभवेदनागतोऽनेहाः किलेति ।

अर्थ - इसलिये मैं ऐसा करुं कि किसी उपाय से इसे अभी मार डालूं फिर भविष्य काल क्या करेगा, वह कैसे सफल हो सकेगा ।

वंशे नष्टे कुतो वंश - वाद्यस्यास्तु समुद्भवः
कार्यकारणभावेन स्थितिमेति जवंजवः ॥४॥

अर्थ - जब कि बांस ही है नहीं, वंशी कैसे होय ।
कारण से ही कार्य की, पैदाइश अवलोय ॥

किन्तु कार्यमपि भवेदहञ्चानार्यतां नानुभवेयं भुवीति चेष्टितव्यम्। मया चैतच्छक्यमेव यतः

धनी धनबलेनैव कुर्याद् यद्यदपीच्छति ।
धनस्यान्तः स्वयं तिष्ठेद्धनायत्तं यतो जगत् ॥५॥

न तपसा न बलेन न विद्यया भवितुर्महतिकार्यमिहान्वयात् ।
द्रविणतः क्रियते तदपि क्षणात्कनकमेव सतामपि दक्षिणा ॥६॥

अर्थ - किन्तु ऐसा करना चाहिए कि काम भी हो जावे, और मैं दुनियां में बदनाम भी न होऊं । मेरे लिये यह बात कोई कठिन नहीं है, क्योंकि मैं धनी हूँ - धनी आदमी धन के बल से जो चाहे सो कर सकता है और आप धन को ओट में भला बना रहता है। यह सारा संसार धन का गुलाम है । जो काम न तो तपस्या के द्वारा हो सकता है न शक्ति के द्वारा और न विद्या या चतुरता के द्वारा ही, वह काम भी धन के द्वारा बात की बात में किया जा सकता है । और तो क्या बड़े बड़े महात्माओं को भी धन के द्वारा वश में किया जा सकता है यही, इस दुनियां की रीति चली आ रही है ।

इति विचिन्त्य पुनः कमप्येकं मातङ्गमाहूय निवेदयाञ्चक्रे यत्किलैतस्य शिशोर्मारणेन भवताऽनुग्राह्योऽस्मि भवन्तञ्चाहं प्रभूतवित्तेनानुगृहीष्यामि यतः किल सुखेन भुवि जीवनयापनं कुर्यादिति दिक् ।

अर्थ - इस प्रकार विचार करके गुणपाल सेठ ने एक चाण्डाल को बुलवाया और उससे कहने लगा कि देखो तुम इस लड़के को मार डालो तो इसमें मेरा बड़ा उपकार हो और उसके बदले में मैं तुम को बहुत कुछ धन देऊंगा जिससे कि तुम अपनी जिन्दगी आराम से काटना ।

मातङ्गः (स्वगतं) यद्यपि वयं चाण्डालाः सत्त्वसंहार एवास्माकं प्रवृत्तिर्भवति, तथापि मार्गगामिन एव तान् मारयाम इत्युचितं न प्रतिभाति। ये केऽपि प्रजासूपद्रवकरा भवन्ति, यद्वा राज्ञाऽपराधिन एवैते किलेति प्रतिज्ञायते येभ्यस्तानेव मारयामः ।

अर्थ - सेठ की बात सुनकर चाण्डाल ने अपने मन में विचार किया कि यद्यपि हम लोग चाण्डाल हैं इतर जीवों के मारने में हम लोगों की सहज प्रवृत्ति हुआ करती हैतो भी अपने रास्ते चलते हुए हर एक जीव को ही मारने लगे यह कुछ ठीक नहीं जंचता । हां, जो लोग प्रजा को

आम तौर पर तकलीफ देने वाले हों या राजा ने जिन को एकान्त से पूर्ण अपराधी ठहरा दिया हो, बस ऐसे जीवों को हम लोग मार सकते हैं ।

अयन्तु तावदबोधो बाल: सहजतयैवोच्छिष्टास्वादनेन स्वोदरज्वालां शमयितुं प्रवृत्त: सुलक्षणश्च प्रतिदृश्यतेऽत कथं मारणीयतामर्हतीति । किन्तु

गुडमिव वणिजामुपग्राहकै: पिपीलिकैरपि गृह्यते तर्कै: ।
धनिनां धनमपि तद्वदेव वै कर्मकैरितरैश्च मानवै: ॥६॥

इत्यतो धनमति लब्धव्यं बालकस्य जीवनमपि नापहर्तव्यं भवति।

अर्थ - यह तो बिल्कुल भोला बालक है, सहज रूप में किसी को भी न सता कर लोगों की जूठन खाकर अपनी पेट की ज्वाला को बुझाने में लगा हुआ है, किसी का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर रहा है और देखने में बडा ही सुलक्षण प्रतीत होता है, फिर इसे किस तरह मारा जा सकता है । किन्तु धनिकों का धन बनियां लोगों के गुड़ के समान माना गया है । जैसे बनियां के गुड़ को ग्राहक लोग तो पैसे से खरीद कर खाया करते हैं, और मकोड़े मुफ्त में भी खाते रहते हैं, वैसे ही धनवान के धन को काम करने वाले तो काम करके खाते हैं और बहुत से बिना काम किये ही खा जाते हैं, यही रीति है । इसलिये मुझे इस सेठ के पास से धन जरुर ऐंठ लेना चाहिए और बालक को मारना नहीं चाहिए ।

बहि: प्रकटमुवाच-भो श्रीमन् भवादृशामादेशकरणमेवास्मादृशामुद्धरणं तत: कार्यमेवास्माकं तदनुकुलमाचरणमिति। अद्य यान्त्याश्चरमप्रहरे भवन्मनोरथं सफलयिष्यामि । अस्माकं कुलकर्म किल प्रबलयिष्यामि । वालकमिमं.कृतान्तस्य कृते सम्वलयिष्यामि । श्रीमतामुद्देशमार्गस्य कण्टकं दलयिष्यामि।

अर्थ - भो महाशय, आप सरीखों की आज्ञा का पालन करने से ही तो हम लोगों का काम काज चलता है अत: मुझे आपका कहना

करना ही चाहिए । ठीक है आज रात को पिछले पहर में मैं आपकी भावना को परी कर दूंगा, हम लोगों के कुलक्रम से चले आये हुए काम को मैं अवश्य करुंगा इस लड़के को काल का कलेवा बना दूंगा, आपके अभीष्टमार्ग में होने वाले कांटे को मैं बिल्कुल नहीं रहने दूंगा, दूर कर दूंगा ।

अथान्धकारपूर्णायां निशि समादायोत्तानशयमन्त्यज: सग्रामाद्बहि: समीप एव गत्वा क्व चित्सरित्तीरस्थित जम्बूवृक्षतले समारोप्य पुन: स्वस्थानमुपजगाम।

अर्थ - इसके बाद रात पड़ने पर जब खूब अन्धेरा हो गया, तो उस लड़के को अपने कन्धे पर रखकर वह चाण्डाल गांव के बाहर गया और गांव के पास में ही एक नदी थी उसके तीर पर जामुन के पेड़ के नीचे उसे डालकर फिर वापिस अपने घर पर आ गया ।

तावतैवामानुषोचितमेतत्कर्म समालोक्य पूत्कर्तुमिव जगतामग्रे ताम्रचूडेन शब्दाथितम् ।

अर्थ - इतने में ही इस काम को मनुष्य के न करने योग्य राक्षसी काम समझ कर दुनियां के सामने पुकार करने के लिए ही मानों मुर्गा बोलने लग गया ।

अहो प्रकटमपि तनयरत्नमपह्रियतेऽमुषिमन्भूतले धूर्तजनेन कथं पुनर्मयेहोडुरत्नानि विकीर्य स्थातुं पार्येतेति किल तान्युपसंहृत्य कुतोऽपिच्छन्नी भवितुं पलायाञ्चक्रे रजनी ।

अर्थ - अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि धूर्त लोग इस धरातल पर प्रकट रुप से दीखने वाले बालक रूप रत्न को ही जब इस प्रकार हड़प रहे हैं तो फिर मैं यहां पर अपने इन नक्षत्र रुप रत्नों को फैलाकर कैसे निर्भय बैठी रह सकती हूं ऐसा सोच कर ही मानों उन सब नक्षत्रों को समेट कर रात्रि भी कहीं छिपने को चली गई।

पश्यन्तु सन्त: किल श्रमणसूक्तमप्यन्यथाकर्तुं प्रयत्यते स्वार्थपरायणैरितीव सरोजिनी जहासेदानीम् ।
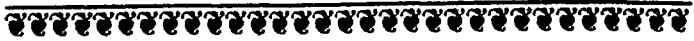
अर्थ - देखो सज्जनो, दिगम्बर साधुओं की कही हुई बात को भी झूठी करने के लिये प्रयत्न करने में भी स्वार्थी लोग कसर नहीं छोड़ते, इस आशय को व्यक्त करने के लिये ही मानों कमलिनी भी उससमय हँस पड़ी ।

निरपराधस्तनन्धयविध्वंशनविधानायापि ब्याप्रियते गोधैरिति क्रोधारुण इव सूर्यनारायणः सहसा समुदस्थात् ।

अर्थ - देखो मनुष्य लोग भी इस प्रकार छोटे बालकों के मारने का व्यापार करने लगे हैं इस प्रकार क्रोध के मारे ही मानों लाल होकर सूर्य महाराज भी एकाएक उठ खड़े हुए ।

नरनामकृतं दृष्टुमयोग्यमिदमित्यतः ।
कुमुद्वतीभिरप्याप्तं निजनेत्रनिमीलनम् ॥७॥

अर्थ - नर इस नाम के धारक प्राणी कहलाने वाले के द्वारा ऐसा राक्षसी कार्य किया जावे और मैं देखती रहूं यह ठीक नहीं, यही सोचकर मानों कुमुद्वती ने भी अपनी (कुमुदरुप) आखों को बन्द कर लिया ।

काङ्गलेशे समुदिते फिरङ्गीराज्यवत्तमः ।
अस्मात् सति सवितरि भूभागाल्लयमभ्यगात् ॥८॥

अर्थ - सूर्य के उदय होने पर उस समय इस धरातल परसे अन्धकार भी दूर हो गया, जैसे कि कांग्रेस का जोर हो जाने पर अंग्रेज लोग भारतवर्ष छोड़कर चले गये ।

तेजोभर्तुस्तमोहर्तुः प्रभावमभिकांक्षिणः ।
विरदावलीमप्यूचुश्चारणा इव पक्षिणाः ॥९॥

अर्थ - अन्धकार के नाश करने वाले और प्रताप के धारक सूर्य के प्रभाव को चाहने वाले ये पक्षीगण, चारणों की भांति उस सूर्य रुप राजा का यश गान करने लगे ।
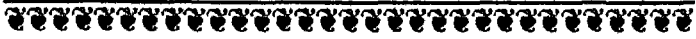
कमलिनीकोषादिव सुकोमलात्कामिनीभुजबन्धाद्बहिरुत्थाय भृङ्गैरिव भर्तृलोकैरपि यथेच्छं विहर्तुमभ्यलाषी यद तदा गोविन्दो नाम गोपालो गोकुलपतिर्मेदिनीमंडलस्य यशः ससूहमिव प्रसरणशीलं स्वर्गप्रदेशमिवा-मितामृतस्राविणं प्रशस्तच्छन्दोबन्धमिवाविकलचतुष्पादं तीर्थस्राता ङ्गनाजनकवरीभारमिव मुक्त बन्धनं निजधेनुधनमादायाग्रतोगोचरवनम-न्वेष्टुमभिवाञ्छंस्तेनेव पथा समाजगाम ।

अर्थ - जब कि कमलिनी नाल के समान कोमल कामिनी की भुजा के बन्धन में से निकलकर उनके स्वामी लोग भौरों के समान यथेच्छ रुप से जहां चाहे वहां जाने लगे उस समय बहुत सी गायों का रखने वाला गोविन्द नाम का गुवालों का मुखिया इस पृथ्वी मण्डल के यश के समान फैलले वाले स्वर्ग के खण्ड समान, अखण्ड अमृत (दूध या सुधा) को पैदा करने वाले उत्तम छन्द के समान निर्दोष चारों पादों को रखने वाले, और ऋतु काल पर नहाई हुई स्त्रीजनों की चोटी के समान बन्धन से रहित ऐसे अपने गोधन को लेकर किसी गोचर भूमि की तलाश में जा रहा था वह उधर से निकला।

सहसैवास्य दृष्टिश्चकोरीव चन्द्रमसं केकिनीव वलाहक-कुलमलिकुटुम्बिनीव कमलवनं पिकोव रसालकोरकं तं शिशुमुदीक्ष्या-तोवसन्तोषमासादितवती ।

अर्थ - एकाएक उस गुवाले की आंखों ने उस बालक को देखा जैसे कि एक चकोरी चन्द्रमा को, मयूरी मेघ-समूह को, भौंरी कमलों के वन को और कोयल आम के मौर को देखा करती है। सो देखकर वह बड़ा खुश हुआ ।

यं डिम्बं मार्तण्डः स्वस्य मन्दमृदुलकरप्रचारेण कपोलयोः परामृशति, तरुरपि परिपक्व फलप्रदानेन पोषयन् प्रतिभाति, प्रकृतिरपि मन्दस्मितं यन्मुखमण्डले पूरयति ।

अर्थ - सूर्य अपने हलके और कोमल कर (हाथ किरण) फैलाकर दोनों गालों पर जिस बालक को चूम रहा है, वृक्ष अपने पके पके फल देकर जिसका पोषण करने में लगा हुआ है और प्रकृति ने जिसके मुख मण्डल पर मीठी मुसकान बना रक्खी है ।

दारकं समुपादाय प्रसन्नमनसा तकम् ।
धनश्रिये स्वभार्यायै ददौ पुत्रमुदीरयन् ॥१०॥

अर्थ - उसने उसे अपना सा पुत्र मानकर बड़ी खुशी के साथ उठाया और अपनी धनश्री नाम की स्त्री को दे दिया ।

धनश्रीरपि तेन मौक्तिकेन शुक्तिरिवादरणीयतां कामधेनुरिव वत्सेन क्षीरभरित स्तनतामुद्यानमालेव वसन्तेन प्रफुल्लभावं समुद्रवेलेव शशधरेणातीवोल्ला-ससद्भावमुदाजहार हारलसितवक्षःस्थला ।

अर्थ - हार से शोभित है वक्षः स्थल जिसका, ऐसी वह धनश्री भी उस बालक को पाकर बहुत खुश हुई, जैसे कि चन्द्र को पाकर समुद्र की बेला। उसका मुख मण्डल खुशी के मारे खिल उठा, जैसे कि बसन्त को पाकर वन भूमि का प्रदेश उसके स्तन दूध से लबालब भर गये जैसे कि बछड़े को पाकर गाय के स्तन । एवं वह उसके द्वारा बड़ी आदरणीय बन गई, जैसे कि मोती के द्वारा सीप ।

अहो किलौरसादपि रसाधिकोऽङ्कप्राप्त पुत्रः प्रभवति यत्र न यौवनहानिर्न प्रसवपीडा, नचापुत्रवतीति नाम व्रीडा,समुपलभ्यते च सहजमेव बाललालनक्रीडा जगतीत्येवं विचारितवती धनश्री स्तमात्मजमिवातीव स्नेहेन पालयामास सरस्वतीव लम्बोदरम् ।

अर्थ - वह धनश्री विचार ने लगी अपने उदर से पैदा हुए पुत्र की अपेक्षा गोद में आया हुआ पुत्र और भी अधिक सुख देने वाला होता है क्योंकि उसमें अपने यौवन की हानि नहीं होती, उत्पन करने की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती और सहज ही बालक को लालन पालन का सुख
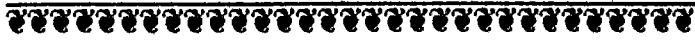
प्राप्त हो जाता है । ऐसा सोचकर वह उसे अपने जाये पुत्र से भी ज्यादा प्यार के साथ पालने लगी, जैसे कि सरस्वती गणेश को पालती थी ।

स च तां मृदुलतमहृदयलेशां स्वसवित्रीनिर्विशेषां गोपवरञ्चानितरपितरमिव मन्वानः सुखेन समयसमयनं तन्वानः समवर्तत ।

अर्थ – वह सोमदत्त बालक भी जिसका भी दिल बहुत ही सुकोमल था, ऐसी उस धनश्री को ही अपनी जन्म देने वाली माता, और गोविन्द गुवाले को ही अपना खास पिता मानता हुआ सुखपूर्वक समय बिताने लगा ।

अथ च सततमेव ताभ्यां गोप-गोपीभ्यां स्वहृदयदेश इवाङ्गीकृतः सुभगतां, प्रताप-दीप्तिभयां प्रतिपालितः पूषेव निर्दोषतां, आह्लाद-मधुरताभ्यामनुगृहीतो द्वितीयाविधुरिवाभिवृद्धिं, सुरूपसुरभीभ्यामुपासितः कुसुमस्तवक इव सकललोकैः स्पृहणीयतां, विनय-विद्याभ्यामनुभावितो गणेश इव चतुरतामनुसन्दधानः समवर्द्धत तावत् ।

अर्थ - अब वह सोमदत्त बालक उस गोप और गोपी के द्वारा हर समय सम्भाला जाता हुआ अपने हृदय-सरीखा होकर सुहावनेपन को, सूर्य के समान प्रताप और दीप्ति के द्वारा ग्रहण किया हुआ निर्दोष (अवगुणों से या रात्रि से रहित) पने को, दूज के चन्द्रमा समान आह्लाद (प्रसन्नता) और मधुरता (प्यार) के द्वारा अपनाया हुआ उत्तरोत्तर वृद्धि को, फूलों के गुच्छे के समान सौन्दर्य और सौरभ के द्वारा सेया जाता हुआ सब लोगों के द्वारा आदरणीयपने को और गणेश के समान विनय और विद्या के द्वारा आलिङ्गन किया हुआ चतुराई को प्राप्त होता हुआ दिनों दिन बढ़ने लगा ।

सम्भोजयेत्सम्प्रति सैव माता सम्भालयेत्सोऽस्तु पिता विधाता ।
पुपूषुरात्मानमसौ स पुत्रः विनाऽऽत्मभावं सुखमस्तु कुत्र ॥ ११ ॥

अर्थ - जो अच्छी तरह से खिला-पिलाकर पालन करे, वस्तुतः वही माता है और जो सम्भाल रखे, बुरी आदतों में न पड़ने देवे, भली बातों

की शिक्षा देवे वही पिता है । जो अपनी चेष्टाओं द्वारा मनुष्य की आत्मा को प्रसन्न करे वही पुत्र है, ऐसा समझकर परस्पर में प्रेम का व्यवहार करना चाहिए, बिना इसके संसार में सुख नहीं है ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयस् ।
पूर्तिं तत्कथिते दयोदयपदे चम्पूप्रबन्धेऽतति
गोविन्दस्य सुतोपलम्भविषयो लम्बस्तृतीयः सति ॥ ३ ॥

अर्थ - इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी माता से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर विरचित इस दयोदयचम्पू में गोविन्द गुवाले के पुत्र-पाप्ति का वर्णन करने वाला तीसरा लम्ब समाप्त हुआ ।

卐 चतुर्थो लम्बः 卐

वल्लवपल्लीमुपस्थितेन राजकार्यवशतः खलु तेन ।
गुणपालेन व्यलोकि बालस्तारुण्ये परिणतो रसालः ॥ १ ॥

अर्थ - पूर्वोक्त प्रकार गोविन्द गोपाल के यहां पलते हुए वह सोमदत्त बालक कुछ दिन बाद जब युवावस्था को प्राप्त हुआ और बहुत ही सुन्दर दिखाई देने लगा, तब एक दिन राजकार्य से वही गुणपाल सेठ उस गुवालों की बस्ती में आया । वहाँ पर उसने उस बालक को देखा ।

वीक्ष्याऽऽत्ममनसि विकल्पमाप मदरिस्व भात्यसौ स पापः ।
मारितेऽपि न मया कथमापत्तितिरितीति वाऽस्तु च विधेः प्रतापः ॥ २ ॥

अर्थ - उसे देखकर उसने अपने मन में विचार किया कि हो न हो, यह तो वही लड़का प्रतीत होता है जो कि मेरा शत्रु था और जिसे मैंने मरवाया था । किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जब वह मरवा दिया गया तो फिर जीवित कैसे रहा ? हो सकता है दैव ने इसका साथ दे दिया हो, अर्थात् मारने वाला अपनी समझ में इसे मारकर चला गया हो, फिर भी कुछ जान रह जाने से धीरे-धीरे पुनरूज्जीवित हो गया हो ।

पुनश्चैकदा गोविन्देन सार्द्ध सहजसल्लापं कुर्वन्नसौ पृष्टवान् यत्किल भवतोऽयमेक एवाङ्गज उतान्यापि काचित्सन्ततिरिति ।

अर्थ - पुनः किसी एक दिन बातों ही बातों में गोविन्द से उसने पूछा कि आपके एक यह लड़का ही है या और भी कोई सन्तान है?

गोविन्दः सहजसरलतया जगाद-श्रीमन्नास्त्ययमप्यस्माकमौरसः, किं करोतु जनो विधेरग्रे पुनः पौरुषथाप्यभवदेकदा दोः रस एतादृक् यतः किल भवन्नगरसमीपं पर्यटतोऽनेन भवादृशामुचितचरणसरोजस्पर्शकेनैकस्मिन्वृक्षतले समदर्शि, निपतितोऽयं समादायि च मयाऽऽत्मजसुखाभिलाषासमायुक्तेन। किन्त्वयं खल्वात्मजादप्यधिकसन्तोषदायी समस्ति विनीतभावेनेति ।

अर्थ - गोविन्द ने सहज सरल भाव से उत्तर दिया - श्रीमान् जी, यह भी हमारा औरस पुत्र नहीं है । क्या किया जाय विधाता के आगे किसी आदमी का कोई वश नहीं चलता । फिर भी एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि आप सरीखों के पवित्र चरण-कमलों को छूने वाले इस सेवक ने आपके ही नगर के पास घूमते हुए, एक वृक्ष के नीचे पड़े इस बालक को देखा । जब मैंने इसे देखा तो मैंने पुत्र के पालन-सुख की अभिलाषा से इसे उठा लिया । किन्तु यह बड़ा विनयवान् है इसलिए हमें तो यह औरस पुत्र से भी अधिक सन्तोषदायी है ।

गुणपालः (स्वमनसि) हूँ मया यदेवातर्कि तदेव फलितम् । स चाण्डालोऽपि महाधूर्तो यो मां विश्ववञ्चकमपि वञ्चयामास । अजापुत्रोऽपि किल खट्टिकस्यारघट्टान्नं खादाञ्चक्रे । अस्तु । प्रकाशमुवाच-भो महाभाग!

नन्दगोप इव श्रीमान् यशोदा तव भामिनी ।
अयमत्र कृष्णवद्भाति सुदामस्थानिनो मम ॥ ३ ॥

अर्थ - गुणपाल गोविन्द की बात सुनकर मन में विचारने लगा-हूँ मैंने जैसा कुछ अपने मन में सोचा, वही तो निकला । देखो मैं तो था ही, किन्तु वह चाण्डाल मेरे से भी अधिक चालाक निकला जो कि मुझ सरीखे ठग को भी ठग गया । आश्चर्य तो इस बात का है कि कसाई के भोजन को बकरा खा गया । खैर हुआ सो हुआ, ऐसा सोचकर बाहर में वह बोला - हे महाशय, आप बड़े भाग्यशाली हैं नन्दगोप सरीखे पुण्यवान हैं और आपकी घर-वाली भी यशोदा सरीखी है, जिनका कि यह लड़का श्रीकृष्ण के समान चेष्टा वाला है, जो कि सुदामा के समान मेरे लिये बड़ा ही प्यारा है ।

अस्मन्मनसोऽयमतीवानन्ददायी लगति यत्किञ्चिदस्मै कथ्यते तदेवासौ निःसंकोचं सम्पादयतीति ।

अर्थ - मुझे तो यह बड़ा ही प्यारा लगता है । मैं जो कुछ इस से कहता हूँ उसे यह बड़ी ही चतुराई और लगन के साथ पूरा कर देता है ।

गोविन्दो जगाद-यद्ययं भवदाज्ञां करोति किमधिकं करोति । तत्करणमेतस्यावश्यकर्तव्यमेवास्ति । भवानस्माकमतिथिर्यस्य सत्कारो गृहस्थवर्गस्याद्यं कर्तव्यंकिं खलु नास्ति यतः ।

अर्थ - यदि वह आप की आज्ञा का पालन करता है तो क्या बड़ी बात करता है । आपकी आज्ञा का पालन करना इसका पहिला काम है क्योंकि आप हमारे अतिथि हैं और अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ वर्ग का मुख्य कर्त्तव्य है ।

अतिथिसत्करणं चरणं व्रते गुणसमुद्धरणं जगतः कृते ।
भगवदादरणं च महामते निखिलदेवमयोऽतिथिरुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ - अतिथि का सत्कार करना सम्पूर्ण सदाचारों में मुख्य सदाचार है, संसार भर के लिये गुण प्रकट करने वाला है और भगवान् को याद करने का सबसे अच्छा ढंग है क्योंकि अतिथि ही सम्पूर्ण देव-स्वरूप है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ।

गुणपालः- भवतां वयोवृद्धानामस्माकमुपरि सर्वदैव कृपा सम्भवति यतः-

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय नदस्य भावः ।
परोपकाराय तरोः प्रसूतिः परोपकाराय सतां विभूतिः ॥ ५ ॥

अर्थ - आप जैसे वयोवृद्धों की तो हमारे ऊपर सदा ही कृपा बनी रहती है । ठीक ही कहा है - जिस प्रकार से गाएं दूसरों के भले के लिये ही दूध दिया करती हैं, नदी का पानी भी दूसरों की भलाई के लिये ही बहता है, वृक्ष भी औरों की भलाई के लिये ही फैलते हैं, वैसे ही सत्पुरुषों की विभूति परोपकार के लिए ही होती है ।

गोविन्दः- भो महाशय ? किन्निगदानि मयास्मै किमपि पितृभावो न प्रदर्शितः पितुः । सर्वप्रथमकर्तव्यं सन्तानस्य पाठनम् यतः-

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ६ ॥

अर्थ - हे महाशय जी, क्या कहूँ मैंने इस बालक के लिये पितापने का कुछ भी निर्वाह नहीं किया । पिता का सबसे पहला काम लड़के को पढ़ाना है । कहा भी है -

जिन्होंने अपने बालक को पढ़ाया नहीं, वे माता पिता उसके शत्रु हैं, उसके जीवन को बिगाड़ने वाले हैं, क्योंकि अपढ़ पुत्र सभ्य पुरुषों के बीच में बैठकर शोभा नहीं पाता है, जैसे कि हंसों के बीच में बगला।

इत्येवं मयाऽपि बहवारं श्रुतं विज्ञानाम्मुखादस्ति, किन्तु वयं ग्राम-निवासिनः, यत्र नास्ति कोऽपि विद्यालयः समस्ति किलैको गुरुर्योऽधुनैनं पाठयति । स च

वदति यदहमस्मै सम्वदामि तदेष पूर्वमेवोपस्थापयति। स गुरुरपि सकलजनशुश्रूषणमेव प्रधानतयाऽस्मै प्रतिपादयति ।

अर्थ - इस प्रकार मैंने विद्वानों के मुख से कई बार सुना है। किन्तु हम लोग गांव के रहने वाले लोग हैं, जहाँ कि कोई विद्यालय नहीं है। हाँ एक गुरुजी हैं, वे इसे पढ़ाया करते हैं । वे भी कभी कहा करते हैं कि मैं जो कुछ इसे बताता हूँ उसे यह पहले से ही मुझे बोलकर सुना दिया करता है । वे गुरुजी भी खास तौर पर इसके लिये यही शिक्षा दिया करते हैं कि सब लोगों की सेवा करना ही अच्छी बात है ।

अथ पुत्रं प्रति लक्षीकृत्य-हे वत्स सोमदत्त ! योऽयं महानुभावोऽस्माकं प्राघूर्णिकस्तत एतदुक्तं त्वया करणीयमेव ।

अर्थ - इस प्रकार कह कर फिर उस गोविन्द ने अपने उस लड़के से कहा कि - बेटे सोमदत्त, ये महाशय अपने यहाँ पाहुने आये हैं, इसलिये जो कुछ भी ये कहें तुम वह काम तुरन्त कर दिया करो ।

गुणपालः - (स्वगतं) मयाऽसौ सोमदतो ऽवश्यं प्रहरणीयस्तथापि तदर्थ ममात्माऽस्य विश्वासयोग्यः करणीयस्तस्मात्किञ्चित्कालमेतस्यानुकूलमाचरणीयमिति नीतिः ।

अर्थ - इतनी सब बात हो जाने के बाद गुणपाल ने अपने मन में विचार किया कि अब भी इसे मारना ही चाहिये, किन्तु इसके पूर्व मुझे इसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे यह मेरा विश्वास करने लगे, मेरी बात को मानने लगे और इसीलिए थोड़े दिनों के वास्ते मुझे इसके अनुकूल हो करके चलना चाहिये । जैसाकि नीति में लिखा हुआ है -

उत्थापयेत्तमुच्चैर्ना यस्य वाञ्छेन्निपातनम् ।
मूर्ध्ना न वाह्यते भूमौ दहनीयं किमिन्धनम् ॥ ७ ॥

अर्थ - मनुष्य जिसका विनाश करना चाहे उसको पहले शिर पर चढ़ा ले । देखो-जिस इन्धन को जलाना होता है उसे भी क्या शिर पर ढोकर नहीं लाया जाता है ?

इति निश्चित्य यथा समयं कदाचित्पारितोषिकदानानुकूलवर्तन-मृदुलतरसम्भाषणादिभिर्नैसर्गिकसरलस्वभावस्य गोपालपतिबालकस्य हृदयं स्वसाच्चकार ।

अर्थ - इस प्रकार विचार कर उस गुणपाल ने कभी तो उसे इनाम देकर, कभी उसके अनुकूल व्यवहार कर और कभी मधुर संभाषण आदि से उस सहज सरल स्वभाव वाले, गुवाल के बालक सोमदत्त के हृदय को अपने अनुकूल बना लिया ।

यतः खलु - **दुर्जनानां वचः स्वादु हृदि हालाहल यथा ।**
फणायां फणिनो रत्नं दंष्ट्रायां गरलं महत् ॥ ८ ॥

अर्थ - क्योंकि, जैसे सांप के फण में मणि होती है किन्तु दाढ़ में उसके हालाहल विष रहता है, वैसे ही दुर्जनों के भी वचन में तो मिठास होता है फिर भी उनका हृदय एक दम काला और भोले जीवों को धोका देने वाला होता है ।

माधुर्यमाप्त्वा पिशुनस्य वाचि न विश्वसेन्ना धरणीतले तु ।
शेवालशालिन्युपले च्छलेन पातो भवेत्केवलदुःखहेतु ॥ ९ ॥

अर्थ - इस भूतल पर दगाबाज आदमी ऊपर से मीठा बोलता है, उसकी मीठी बातों में आकर किसी को भी उसका विश्वास नहीं कर बैठना चाहिये, क्योंकि जल की काई वाले पत्थर पर चलने से फिसल कर गिरना ही पड़ेगा जिससे कि चोट लगेगी । वैसे ही दगाबाज की बातों में फंसने से भी नुकसान होगा ।

सोमदत्तस्तु पुनः सभ्यतयैवातिथेः सत्करणपरायणस्तदुपरि पितुरादेशस्तदा किमिह संकोचकरणेऽववकाशः स्यात् । यदेव स प्रतिपादयन् बभूव तदेवायं कर्तुमुत्साहवान् तस्थौ ।

अर्थ - किन्तु बिचारा सोमदत्त तो बिलकुल सरल मन का था इसलिये प्रथम तो वह अपने आप ही अतिथि के सत्कार करने में तत्पर रहा करता था। तिस पर भी पिता की आज्ञा हो चुकी थी कि यह जो कुछ कहे सो कर दिया करो। ऐसी दशा में उसे जरा भी संकोच करने के लिए अवकाश कहां था। अतः जो कुछ वह कहता था उसी को सोमदत्त तुरन्त करने के लिये तय्यार रहता था।

द्वयोः परस्परं मैत्री मृगजम्बुकयोरिव ।
एकः सहजसौहार्दी परो घातपरायणः ॥ १० ॥

अर्थ - हिरण और गीदड़ जैसे स्वभाव के धारक उन दोनों सोमदत्त और गुणपाल की आपस में खूब गहरी मित्रता हो गई। उनमें एक तो बिचारा स्वाभाविक मित्रता रखता था, किन्तु दूसरा हर समय उसका घात करने में लगा हुआ रहता था।

गुणपालः कतिचिद्दिनानन्तरमेकस्मिन्दिवसे किलैकाकिनं सोमदत्तमवेत्य स्वसाध्यसाधनावसरमिति निश्चित्योक्तवान् यत्किल हे मित्र सोमदत्त ? मद्गृहं प्रत्यत्यन्तावश्यकसन्देशप्रेषणावसरः समायातः।

अर्थ - कुछ दिन बाद एक दिन सोमदत्त को अकेला ही अपने पास बैठा हुआ देखकर अपने साध्य की सिद्धि का अच्छा अवसर समझकर गुणपालः बोला कि मित्रवर सोमदत्त, आज तो एक बहुत जरूरी समाचार मुझे अपने घर पर भेजना है, क्या करना चाहिए।

सोमदत्तं दीयतां मह्यमहमेव व्रजिष्यामि पितुरादेशमुद्धरिष्यामि भवत्कार्यं सम्यक्तया सम्पादयिष्यामि चेति सम्प्रार्थ्य पत्रमुपादाय सुसज्जीभूय शीघ्रगत्याऽनुव्रजन् पुरसमीप एवाऽऽरामे क्वचित्पादपच्छायामासाद्य विश्राममादातुं समुपविवेश। वर्त्मश्रान्तिवशेन निद्रामप्यनुबभूव चेति।

अर्थ - सोमदत्त बोला - मुझे ही दो, मैं ही जाऊंगा, पिताजी की आज्ञा को पूर्ण निभाऊँगा, और आपका काम अच्छी तरह सिद्ध कर दिखलाऊँगा।

इस प्रकार कह करके गुणपाल के लिखे हुये पत्र को लेकर खूब सजधज कर शीघ्रता के साथ चलकर उस नगर के ही पास में एक बगीचा था उसमें एक वृक्ष को पाकर उसके नीचे बैठ गया । मार्ग का थका हुआ तो था ही इसलिए वहाँ उसे निद्रा आ गई ।

वसन्तसेना नाम पण्याङ्गना तस्मिन्नेवावसरे कुसुमावचयार्थमिहाऽऽगता संसुप्तं तमवलोक्य अहो कोऽयं रतिपतिमप्यतिवर्तमानो युवा, कथं चेहाऽऽगत्य सुप्तोऽमुष्य निगलदेशे समवलम्बितं पत्रमपि वर्तते कच्चिदस्मिन्नस्य परिचयोऽकिङ्कतो भवेदिति तदादाय वाचयामास शनैः ।

अर्थ - इतने में ही एक वसन्तसेना नाम की वेश्या फूल तोड़ने के लिये वहाँ पर आ पहुँची । उसने उसे सोया हुआ देख कर सोचा कि यह यहाँ पर कौन जवान सो रहा है, जो कि कामदेव को भी मात कर रहा है । इसके गले में पत्र भी बंधा हुआ है, सम्भव है इसी में इसका कुछ परिचय लिखा हुआ मिल जाय, ऐसा सोच कर उस पत्र को धीरे से खोल कर उसने अपने मन में पढ़ा ।

यस्मिन्नेवं लिखितमासीत्

श्रीः

विषं सन्दातव्यं भवति परमागन्तुकनरे,
त्वयाऽमुष्मै सद्यो नहि किमपि चान्यत्प्रविचरेः ।
प्रिये त्वं चेद्धर्या सुबल ? यदि पुत्रस्त्वमथ मे,
मदादेशोद्धारे न पुनरधुना जातु विरमेः ॥ ११ ॥

ह. गुणपालो राजश्रेष्ठी ।

अर्थ - उस पत्र में इस प्रकार लिखा हुआ था कि हे प्रिये, तू अगर मेरी अर्द्धाङ्गिनी है और हे महाबल, तू अगर मेरा सच्चा पुत्र है

तो यह जो पत्र लेकर आ रहा है उस आदमी को तुरन्त विष खिला कर मार डालना, इसमें जरा भी आगा पीछा मत सोचना, मेरे लिखे हुए को बिलकुल भी मत टालना

हस्ताक्षर गुणपाल राजश्रेष्ठी ।

वसनतसेना-अहो किलायं तु पत्र-लेखकोऽस्माकं नगरनिवासी प्रतिभाति य: स्थानान्तरमवाप्तोऽपि वर्तते । किन्तु तेन सज्जनेन नूतने वयसि वर्तमानाय सुसज्जावयवाय सम्पूर्णसामुद्रिक-समुचितलक्षणलक्षितसौभाग्याय स्वरूपपराजित-पशुपतिप्रतीपाय पुरुषोत्तमप्रियासहोदरसमानसुन्दराननारविन्दायावलोकनमात्रेणेव च मनोनयनमोदकायेदृक् श्रवणासुभगं सतां हृदयविदारकं वृत्तं लिखितं कुत: सम्भाव्यताम् ।

अर्थ - पत्र को पढ़ कर वसन्तसेना ने विचार किया कि इस पत्र का लिखने वाला तो हमारे नगर का रहने वाला ही मालूम पड़ता है, जो कि यहाँ पर इस समय है भी नहीं, बाहर गया हुआ है। किन्तु वह सेठ तो बड़ा मज्जन है, वह इस नवयुवक, सुसंगठित सुन्दर शरीर वाले, जिसके सभी सामुद्रिकलक्षण सौभाग्य के सूचक हैं, अपने रूप के द्वारा जिसने कामदेव को जीत लिया है, जिसका मुख-कमल चन्द्रमा के समान सुन्दर है, देखने मात्र से ही मन और नयनों को भाने वाले इस सुन्दर पुरुष के लिये ऐसी सत्पुरुषों के हृदय को टूक-टूक कर देने वाली, सुनने में ही बुरी बात को लिखे, यह समझ में नहीं आती, अर्थात् वह ऐसी बात अपनी कलम से नहीं लिख सकता ।

यदिदं - **कमलाय जलाद्वह्निर्भिषजो रोगिणे गरम् ।**
दीपात्तमोऽध्वनीनाय प्रतिभाति समुत्थितम् ॥ १२ ॥

अर्थ - क्योंकि, यह तो ऐसा है जैसे कि कमल को जलाने के लिये जल से ही अग्नि उत्पन्न हो गई हो, या वैद्य ने ही रोगी को जहर दे दिया हो, अथवा मार्ग चलने वालों को दीपक ही अन्धेरा कर रहा हो ।

आ: स्मृतं तस्यास्ति विषा नाम कुमारी कुमारवयोऽतिक्रमणेन द्वितीयाश्रमसन्धारणप्रवणाचरणकरणा मम सहचरी यस्यै वर-विलोकनोत्कण्ठां च तन्मनोमर्कटस्तम्भनार्थनिगलोचितचलनाया गुणश्रिया मुखारविन्दान्मयापि श्रुतमनेकवारम् ।

अर्थ - थोड़ी देर बाद वह विचारने लगी कि हाँ अब याद आई- उन गुणपाल नाम के सेठजी के एक विषा नाम की लड़की है, जोकि इस समय बालकपन को लांघ चुकी है, जवान हो चुकी है, अत: वह गृहस्थाश्रम धारण करने में मुख्य गिने जाने वाले चाल-चलन को अपनाना चाहती है, अर्थात् विवाह-योग्य हो गई है, वह मेरी सखी है । उसके लिये वर ढूंढने की चिन्ता उसके माता-पिता को लगी हुई है, यह बात मैंने भी उन सेठजी के मनरूप बन्दर को वश में करने के लिए सांकल का काम करने वाला है चाल चलन जिसका ऐसी सेठानी गुणश्री के मुख कमल से कई बार सुनी है।

भवितुमर्हति तदनुसन्धानवशंगतेनान्विष्यान्यूनगुणप्रसूनदामललामाभिरामरूपोऽपरिमितपुण्यपय: कूपौ निजभागधेयप्रशस्तिस्तूपो निखिललोकसङ्कलितपापदशमशकसमुत्थापननिमित्तधूपोऽप्यसौ तरुणोऽभिप्रेषित: स्यात् किल स्वयमन्यत्किञ्चिद्राज-कार्यव्यासङ्गेनेति लेखनप्रमादेन च विषाया: स्थाने विषमिति लिखितुं पार्यतु एवेति किल समाधिगम्य निजविलोचनकज्जला-ञ्जितशलाकया 'विषा सन्दातव्या' इत्येवं कृत्वा तथैव निगले तस्य सन्निबद्ध्य स्वस्थानं समासादितवती।

अर्थ - हो सकता है कि वर की खोज में गया हो और इस तरुण को खोजकर वर के रूप में निश्चित करके उसने भेजा हो। कैसा है यह तरुण-बहुत से गुण वे ही हुए फूल उनकी माला सरीखा सुहावना है, बहुत ही सुन्दर रूप वाला है, असीम पुण्य रूप जल का भरा कूप है, अपने भाग्य को प्रगट करने के लिये प्रशस्तिस्तूप समान है अर्थात् इसको देखकर इसके भाग्यशालीपने का पता चल जाता है । एवं जो युवक संसार भर के इकट्ठे हुए पाप रूप डांश-मच्छरों को दूर हटाने के लिये

धूप समान है । स्वयं किसी अन्य राजकार्य के करने में लगे होने के कारण प्रमाद से विषा के स्थान पर विष लिखा गया हो । ऐसा सोचकर उस वसन्तसेना ने अपने आँख के काजल में सलाई भरकर उसके द्वारा 'विष सन्दातव्यं' के स्थान पर 'विषा सन्दातव्या' ऐसा बना दिया और पहले की तरह से ही उस पत्र का उसके गले में बाँधकर वह अपने स्थान पर चली गई ।

जलस्य सङ्गमे नद्याभ्यायातोऽस्त्युत्करोच्चयः ।
वात्ययाऽगत्य निःशोषीभावतां प्रापितो द्रुतम् ॥ १३ ॥

अर्थ - जल के स्त्रोत का नदी के साथ मिलना समुचित है, किन्तु उसके बीच में कोई कूड़े का ढेर आकर रुकावट डाल दे तो उसे हटाने के लिये हवा की भी जरूरत पड़ती है । वैसे ही विषा के साथ में इस सोमदत्त का समागम होना था जिसमें सेठ के लिखने ने जो अड़चन पैदा कर दी थी, वह वसन्तसेना के द्वारा दूर हो गई ।

सोमदत्तः क्षणलाक्षणिकविश्रामानन्तरमुत्थाय स्वर्गीयोपपाद-स्थानादास्थानमण्डपमनल्पदर्शनीयकल्पसंजल्पबहुलपत्तनोत्तमं शीघ्रमेव प्रविवेश सुप्रसन्नमनाः ।

अर्थ - थोड़ी देर विश्राम लेने के बाद उठकर प्रसन्न हो रहा है मन जिसका ऐसा, वह सोमदत्त शीघ्र ही नगर के भीतर गया, जैसे कि उपपादशय्या पर से उठकर कोई देव अपने सभास्थान पर जाता है, जैसे देवों का सभास्थान नाना तरह के देखने योग्य पदार्थों के समूह से व्याप्त है, वैसे ही उस नगर में भी बहुत सी देखने योग्य वस्तुएँ थी ।

सम्मोहयन् मानिनीजनं लोकोत्तरमृदिम्ना, सन्तोषयन् सभ्यजनदृङ्मण्डलं सहजविनयगुणगरिम्णा, सम्भावयन्महाजनसमूहं स्वशरीरसमङ्कित-भूषणगणमहिम्ना, नैसर्गिकचातुर्यपूर्यमाणसमुचितचेष्टितेन चाश्चर्यपर्यायपरोतं विदग्धपरिकरं कुर्वन् काम इव कमनीयः किल कामिनीजनहृदयमन्दिरं सम्मान इव माननीयतामुपगतः

सभ्यसमुदितपरिषद्वरं सन्तान इवातिशयस्नेहनिरीक्षणीयो बन्धुवर्गोत्सङ्गमण्डलं, समवाप ललिततमेङ्गितः स्वसमुद्देशं गुणपालश्रेष्ठिसदनसन्निवेशम् ।

अर्थ - किसी भी दूसरे आदमी में नहीं पाई जाने वाली ऐसी अपनी सुन्दरता के द्वारा मानिनी स्त्रियों को मोहित करता हुआ, सभा में बैठने वाले लोगों की आँखों को भी अपने बढ़ते हुए विनय गुण के द्वारा सन्तोषित करता हुआ, अपने शरीर पर पहिने हुए आभूषणों की बहुमूल्यता के द्वारा महाजन लोगों को भी अपने अनुकूल बनाता हुआ और सहज स्वाभाविक चतुराई से परिपूर्ण अपनी उचित चेष्टा के द्वारा विद्वानों के समूह को भी आश्चर्य में डालने वाला वह सोमदत्त, कामदेव के समान तो सुन्दर था, स्वयं भी सम्मान के समान ही मान्यपने को प्राप्त था, अपने बाल-बच्चे के समान लोगों के द्वारा प्रेम की भरी हुई दृष्टि से देखा जा रहा था, और बहुत ही सुन्दर चेष्टा वाला था, जो कि अपने अभीष्ट स्थल सेठ गुणपाल के घर पर जा पहुँचा, जैसे कि कामदेव सुन्दर नवयुवती स्त्रियों के मनमन्दिर में पहुँच जाता है । अथवा सम्मान जैसे सभ्यजनों की सभा में जा प्राप्त होता है, या बालक अपने बन्धु लोगों की गोदी में चला जाता है ।

यदीक्षणमात्रेणेव विषा विषादप्रतियोगिनभावमङ्गीकुर्वाणा किलेत्थं विचचार स्वमनसि, मनसिजमनोज्ञो मृदुलमांसलसकलावयवतया समवाप्तारोग्यो दृशामनिमेषतयोपभोग्यो मदीयहृदीषाङ्गीकरणयोग्योऽस्ति कोऽसौ श्रीमान् यः खलु पूर्वपरिचित इव मम चितःस्थानमनुगृह्णाति ।

अर्थ - जिसे देखते ही विषा के मन मे एक प्रकार की प्रसन्नता हुई और वह इस प्रकार विचार करने लगी कि यह कौन महाशय है जो कामदेव-सरीखा सुन्दर है, जिसके सभी अङ्गोपाङ्ग बहुत ही सुकोमल और मांसल हैं, अतः पूर्ण नीरोगता को प्रगट कर रहे हैं, जिसे देख कर आँखे तृप्त नहीं हो पातीं, देखते ही रहना चाहती हैं, मेरा मन जिसे स्वीकार करना चाहता है और जो पहले का परिचित सा जाना हुआ भी प्रतीत होता है ।

अनङ्गसमवायोऽपि सदङ्गसमवायवान् ।
निर्दोषतामुपेतोऽपि दोषाकरसमद्युतिः ॥१४॥

अर्थ - जो महानुभाव अच्छे शरीर वाला होकर भी बुरे शरीर वाला है, एवं च निर्दोषता को रख कर भी दोषों के समूह की शोभा वाला है ऐसा यह अर्थ परस्पर विरूद्ध पड़ता है । अत: इसका ऐसा अर्थ करना चाहिये कि अनङ्ग अर्थात् कामदेव की सी बुद्धि जिसे देख कर होती है ऐसा बहुत ही उत्तम अङ्ग वाला है, जिसमें कोई भी दोष नहीं है इसलिये दोषाकर अर्थात् चन्द्रमा के समान कान्ति वाला है ।

बहुलोहोचितस्थानोऽपि सुवर्णपरिस्थितिः ।
सञ्चरन्नपि मच्चिते स्थितिमेति महाशयः ॥१५॥

अर्थ - यह बहुत ही सुन्दर रूप वाला है, इसलिये इसे देख कर अनेक तरह की तर्कणाएँ उठ खड़ी होती हैं, एवं यह घूमता हुआ आ रहा है तो भी वह मेरे मन में अच्छी तरह स्थान पा चुका है । इस श्लोक में भी बहुलोह और सुवर्ण यानी लोहा और सोना, एवं घूमता हुआ और ठहरा हुआ ये शब्द परस्पर विरूद्ध से प्रतीत होते हैं ।

नाश्विनेयोऽद्वितीयत्वान्नेन्द्रोऽवृद्धश्रवस्त्वतः ।
दृश्यरूपतया कामोऽपि कथं भवतादयम् ॥१६॥

अर्थ - यह ऐसे सुन्दर आकार वाला कौन है - यह अश्विनी कुमार तो हो नहीं सकता, क्योंकि वे तो दोनों साथ में रहते हैं, यह अकेला है । इसके सरीखा दूसरा संसार भर में है ही नहीं । यह इन्द्र भी नहीं है क्योंकि इन्द्र तो वृद्धश्रवा अर्थात् लम्बे कानों वाला होता है इसके कान लम्बे न होकर ठीक परिमाण वाले हैं। इसी प्रकार देखने योग्य रूप वाला है अत: कामदेव भी नहीं हो सकता, क्योंकि कामदेव अदृश्य रूप वाला होता है, अर्थात् उसे कोई देख नहीं सकता । फिर यह कौन है कुछ समझ में नहीं आता।

इत्येवं सकलजनानन्दकरः शशधर इव समुचितच्छायः पादप इव गृहाङ्गणे समुपस्थितो भूत्वा महाबलस्याग्रे पत्रं पातयामास ।

अर्थ - इस प्रकार से चान्द के समान सबको प्रसन्न करने वाला और वृक्ष के समान अच्छी छाया (कान्ति) वाला वह सोमदत्त घर के आंगन में गया और महाबल के आगे उसने पत्र रख दिया ।

महाबलश्च पत्रं पठित्वा मातुराननारविन्दं सा च तस्यास्यमण्डलं साश्चर्यदृशाऽवलोकयितुमारेभे-यदीदृक् तदा स्वयमपि कथं किल न समायात इति ।

अर्थ - महाबल ने पत्र पढ़ा, पढ़कर वह तो अपनी माता के मुख-कमल की ओर देखने लगा और माता उसके मुख की ओर देखने लगी। दोनों आपस में कहने लगे कि क्या विषा का विवाह इसके साथ कर दिया जाय और यदि ऐसी ही बात है तो फिर वे आप भी क्यो नहीं आये, इत्यादि ।

महाबलः पृच्छति-भवद्भयः पत्रमेव दत्तमुतान्यदपि किञ्चित् कथितम्।

अर्थ - फिर महाबल ने सोमदत्त से पूछा कि क्या आपको उन्होंने पत्र ही दिया, या और भी कुछ कहा है ।

सोमदत्तः- समस्ति महदावश्यकीयं कार्यं त्वयैव समुद्धार्यमद्यैव सम्प्रधार्यमपि। न चाहमधुनाऽनिवार्यकार्यसम्पातवशेनाऽऽगन्तुमर्हामीति निगदितमार्यशिरोमणिना।

अर्थ - मुझे तो उस महापुरुषों के मुखिया ने इतना ही कहा है कि आज तो एक बहुत जरुरी काम आ पड़ा है जो तुम से ही हो सकता है और आज का आज ही होना चाहिये । मुझे स्वयं को तो कितने ही ऐसे कार्य आ उपस्थित हुए हैं जिनके कारण मैं वहाँ नहीं आ सकता हूँ ।

महाबलः क्षणं विचार्य पुनरुवाच मातुरभिमुखीभूय समस्ति प्रातरेवाक्षयतृतीयादिनं यत्किललग्नविधौ सर्वसम्मतं तदुपरि च तत्र वृहस्पतिवारो रोहिणी च तस्मादेतत्सम्भाव्यते यतो मङ्गलकर्मणि दीर्घसूत्रता च नोचिता भवति ।
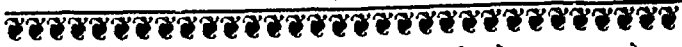
अर्थ - थोड़ी देर सोचकर महाबल माता की ओर लक्ष्यकर बोला- हे माता कल अक्षयतृतीया है जो कि विवाह के लिए सर्व-सम्मत उत्तम दिन है और तिस पर भी कल बृहस्पतिवार है, रोहिणी नक्षत्र है, इन सब बातों को लेकर हो सकता है कि उन्होंने ऐसा लिखा हो, क्योंकि मौका आने पर अच्छे काम में ढील करना भी फिर ठीक नहीं होता।

यतः—प्रातः कार्यमुताद्यैव कार्यमद्यापि शीघ्रतः ।
नर्गतेऽवसरे पश्चात् कुतश्च न भवेदतः ॥२७॥

अर्थ - क्योंकि-काल करे सो आज कर, आज करे सो अब । अवसर बीता जात है, फेर करेगा कब ॥ ऐसा नीति-वाक्य है ।

किञ्च - **सुशीलत्वं विनीतत्वं विद्या समवयस्कता ।**
औदार्यं रूपमारोग्यं दृढत्वं पटुवाक्यता ॥२८॥

गुणा वरोचिता एते यूनि सम्भान्ति साम्प्रतम् ।
पितुराज्ञा शिरोधार्या कार्याऽस्माभिरतो द्रुतम् ॥२९॥

अर्थ - एक बात और भी है - इस नवयुवक में सुशीलपना, विनीतभाव, अच्छी विद्या, समान अवस्था, उदारता, सुन्दरता, नीरोगता, सुदृढ़ शरीरता अथवा दृढ़ संकल्पपना और बोलने की चतुरता इत्यादि जो गुण वर में होने चाहिए वे सभी पूर्ण रूप से मौजूद हैं, तिस पर पिता की आज्ञा का हमको जरूर पालन करना ही चाहिए, इसमें देरी करना ठीक नहीं।

वनश्रिया वसन्तस्य सम्प्रयोग इवोत्तमः ।
विषया फुल्लवक्त्रस्य सम्पल्लवसमेतया ॥२०॥

अर्थ - मुझे तो विषा के साथ में इसका संयोग ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि वनलक्ष्मी के साथ वसन्त का, क्योंकि वसन्त जिस प्रकार अपने आगे फूलों को लिये हुआ आता है, वैसे ही यह प्रसन्न मुख वाला

है, और वनलक्ष्मी जिस प्रकार अच्छे-अच्छे पत्तों से युक्त होती है वैसे ही अपनी विषा भी मीठे शब्द बोलती है । अत: इन दोनों का विवाह-सम्बन्ध हो ही जाना चाहिए ।

दीप्त्या दीपस्य चन्द्रस्य ज्योत्स्नया सरिताम्बुधेः ।
भासाऽर्कस्य समायोगे का समस्तु विचारणा ॥२१॥

अर्थ - दीप्ति के साथ में दीपक का, चांदनी के साथ चान्द का, नदी के साथ समुद्र का, और प्रभा के साथ में सूर्य का समागम हो, उसमें विचार की जरूरत ही क्या है ।

एवं विचार्य सञ्जातो विवाहो विधिवत्तयोः ।

अर्थ - इस प्रकार सोच विचार कर विषा के साथ में सोमदत्त का विवाह बड़े ठाठ के साथ कर दिया गया ।

नागरिका: परस्परम् -

एक:- **विश्वविश्वासकारीदं मङ्गलं तावदेतयोः ॥२२॥**

अर्थ - विषा और सोमदत्त के विवाह-सम्बन्ध को देखकर प्रसन्नता से गाँव के लोगों में परस्पर इस प्रकार चर्चा होने लगी - एक ने कहा कि भाई, इन दोनों का यह विवाह तो संसार भर को प्रसन्न करने वाला बहुत ही योग्य हुआ है ।

पर:- **सम्प्राप्तो विषया भर्ता गुणरत्नमहोदधिः ।**

अर्थ - यह सुन कर दूसरा बोला कि सचमुच विषा ने जो वर पाया है वह गुण रूप रत्नों का समुद्र है ।

इतरः - **एतत्कृतस्य पुण्यस्याप्यहो केनाङ्क्यतेऽवधिः ॥२३॥**

अर्थ - यह है भी तो कैसी सुशील, इसके पुण्य को भी कोई आंक सकता है क्या ?

अपरः- **सहजेन कथं प्राप्य एतादृक् भुवि सन्निधिः ।**

अर्थ - तभी तो इसने ऐसा वर पाया, नहीं तो सज्जनों के भी द्वारा सम्मान-योग्य ऐसे वर का समागम हो जाना कोई आसान बात नहीं है।

उत्तर- **विलोक्यते महाभागः कोऽप्यसौ सुप्रसन्नधीः ॥२४॥**

अर्थ - यह कोई बहुत ही भाग्यशाली प्रतीत होता है, क्योंकि जब इसे देखो तभी हंसमुख दीख पड़ता है, विषाद इसे छूता भी नहीं ।

अन्य :- **पुण्यवानयमप्यस्ति येनाप्तेतादृशी रमा ।**

अर्थ - इसके पुण्यवान होने में कोई सन्देह भी क्या है, तभी तो विषा सरीखी उत्तम स्त्री लक्ष्मी इसे प्राप्त हुई है ।

कश्चित् - **सुधायास्तु विधोर्योगो यगतां सुकृतक्रमात् ॥२५॥**

अर्थ - भाई ठीक ही तो है, बिना पुण्य के संसार में ऐसा चन्द्रमा के साथ सुधा का सा सुयोग नहीं मिलता, पुण्य के उदय से ही मिलता है । इस प्रकार से बस्ती के सभी लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
प्रोक्ते तेन शुभे दयोदयपदे लम्बोऽत्र वेदोपमः
यस्मिन् सोमसमर्थितस्य विषया ख्यातो विवाहक्रमः ॥ ४ ॥

अर्थ - इस प्रकार श्री मान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणीभूषण, बाल-ब्रह्मचारी पं. भूरालाल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस दयोदयचम्पू में सोमदत्त और विषा का विवाह वर्णन करने वाला चौथा लम्ब समाप्त हुआ ।

卐 पञ्चमो लम्बः 卐

गुणपालः अहो यदेव कृतं मारणाय तदेव जातं समुत्तारणाय स्पृहयामि किलैतत्कारणाय न तु शक्नोमि निर्धारणाय सत्यमेव नमोऽस्तु सत्याधारणाय मुनये चारणाय । अस्तु शीघ्रमेव यामि तं पुनरपि मारयामि न तु दृशापि दृष्टुं पारयामि । नेदानीं तु तज्जीवनायार्षमप्युक्तं समाश्रयामीति ।

अर्थ - जब यह समाचार गुणपाल को मालूम हुआ तो वह सोचने लगा- देखो जो काम जिसके मारने के लिये किया गया, वही उसे न मारकर प्रत्युत उसके लाभ के लिए हो गया । ऐसा क्यों हुआ इस पर विचार करता हूँ तो कुछ समझ नहीं पाता हूँ । हाँ, उन चारण मुनिराज के लिए नमस्कार करना पड़ता है, जिनकी कि धारणा बिलकुल सत्य घटित हुई, अनेक उपाय करने पर भी उसके विरूद्ध न हो सका। अस्तु अब यहां ठहरना ठीक नहीं, जल्दी चलूं अब भी उसे मारूँ, क्योंकि मैं उसे अपनी आँख से देख नहीं सकता हूँ । मारूँगा ही, आज तक तो उसके लिये ॠषि का कहना ही बचाता था, अब तो वह भी पूरा हो गया । विषा के साथ उसका सम्बन्ध हो लिया। अब आगे तो उसका बचाने वाला भी मैं नहीं देख रहा हूँ ।

गोविन्द :- अत्रैवान्तरे समागत्योक्तवान् यत्किल कथं न समागतोऽद्यापि सोमदत्तः श्रीमदुक्तं सन्देशं दत्वेति ।

अर्थ - गुणपाल ऐसा सोच रहा था कि इतने ही में गोविन्द ने आकर के गुणपाल से पूछा कि सोमदत्त जो आपका संदेश लेकर गया था वह आज तक भी लौटकर नहीं आया, क्या बात हो गई?

गुणपाल :- समम्भ्रममुत्थाय मिलनं कुर्वन् जगाद -

भवान् सम्बन्धि अस्माकं यातु माकं मनागपि ।
तत्रेव मम जामाता स स्थाप्यति कियद्दिनम् ॥१॥

अर्थ - गुणपाल हर्ष के साथ जल्दी ही उठकर गोविन्द से भेंट करता हुआ बोला - घबराते क्यों हैं, अब तो आप हमारे समधी बन बन गये और वह हमारा जमाई । वह अभी कुछ दिन वहीं रहेगा ।

गोविन्द :- **यादृशी भवतामिच्छा श्रीमतामेव बालकः ।**
सरः सम्पादत्यब्जमिनो वर्द्धयते सकः ॥२॥

अर्थ - यह सुन कर गोविन्द बोला - जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही करें । आपका ही बालक है, दूसरे का थोड़े ही है। तालाब तो कमल को सिर्फ पैदा करने वाला होता है, किन्तु उसका प्रसन्न करने वाला उसे बढ़ाने वाला तो सूर्य है, वैसे ही हमने तो केवल उस सोमदत्त को पाल-पोष कर बालक से बड़ा कर दिया। अब आगे उसकी उन्नति आपके अधीन है ।

कवि :- **सम्भाषणं तयोरेवमिवाभृद्वकहंसयोः ।**
एकोऽतिकुटिलस्वान्तः परो भद्रस्वभावभाक् ॥३॥

अर्थ - इस पर कवि कहता है कि इस प्रकार गुणपाल और गोविन्द इन दोनों में परस्पर बात हुई । जिन में से एक तो बगले के समान कुटिल स्वभाव वाला है, किन्तु दूसरा हंस के समान बिलकुल सीधा भद्र स्वभावी है ।

गुणपाल :- यद्यपि भवतां वियोगो दुनोति मनस्तथापि प्रतीक्षते कुटम्बिजनः पञ्चषड्-दिवसनिमित्तमिहागतोऽसौ श्रीमतां चरणधनस्तथापि कार्यवशाद् व्यतीतः कालो मासादपि घनस्मात्प्रातरेव यास्यतीति वक्तुं सङ्कोचमञ्चति दशनवसनमिति क्षमायाचनां करोमि ।

अर्थ - गुणपाल बोला - आप से दूर होने के लिये यद्यपि मन नहीं चाहता, किन्तु बहुत दिन हो गये, कुटुम्ब के लोग सब याद करते होंगे, क्योंकि मैं आया तो था केवल पाँच छह दिन के लिए, जिसको कि आप सरीखों के चरणों में आज तक महीने से भी अधिक दिन हो

गए । कई कार्यों के वश होकर इतने दिन ठहरना पड़ा । अब यह कहते हुए मेरा होंठ या मुख संकोच कर रहा है कि मैं सवेरे ही यहाँ से चला जाऊँगा । अतः क्षमा चाहता हूँ ।

गोविन्द :- अहो किमवादि श्रीमद्भिर्भवान् यास्यतीति सायमिव कमलमस्माकं मनो मुकुतामङ्गीकरतीति कदा पुनर्भवतां दर्शनं भविष्यतीति वा । नास्माभिर्भवच्चरणारविन्दयोः काचिदपि सेवा समपादि तदर्थमेष दासः सम्भवति किलाञ्जलिसम्वादी भवता विना दुर्भगं भविष्यति दिनयापनमद्यादि ।

अर्थ - गोविन्द बोला - अहो आपने यह क्या कहा, क्या आप जा रहे हैं ? यह बात सुन कर हमारा तो मन बिलकुल उदास हो रहा है । जैसे कि सन्ध्या समय में कमल । न जाने, अब फिर आप के दर्शन कब होंगे । हम लोगों से आपके चरण-कमलों की कुछ भी सेवा नहीं हो सकी, इसके लिये यह सेवक हाथ जोड़े हुए है । क्या कहें, आपके बिना हम लोगों का तो आज से दिन कटना भी कठिन हो जावेगा।

गुणपाल :- तुरङ्गमधिरुह्य शीघ्रमेव निजगृहमाजगाम ।

अर्थ - इसके बाद घोड़े पर सवार होकर गुणपाल शीघ्र ही अपने घर आ गया ।

गुणश्री :- पत्युरागमनमुपेत्य मुकुलितकरकमलयुगला सम्भवन्ती समागत्य तस्य वामभागे समुपस्थिता जाता ।

अर्थ - पतिदेव का आना सुनकर गुणश्री अपने दोनों हाथ जोड़े हुए आकर उसकी बाई तरफ में आ खड़ी हुई ।

महाबल :- पितृचरणयोर्नमस्करोमीति गदित्वा सम्मुखे स्थितः सन् समुवाच-यथादिष्टं पत्र-द्वारा भवता तथा किल विषायाः सोमदत्तेन सार्द्धं पाणिग्रहणविधिरतीवानन्देन कृत इति ।

अर्थ - पिताजी के चरणों में नमस्कार हो, ऐसा कहकर महाबल गुणपाल के सामने आ खड़ा हुआ और बोला कि जैसा आपने पत्र में

लिखा था आपकी आज्ञानुसार विषा का विवाह सोमदत्त के साथ बहुत ही ठाठ से हम लोगों ने कर दिया ।

गुणपाल :- क्वास्ति तत्पत्रं किं लिखितं मया तस्मिंस्तद्वाचय ?

अर्थ - कहाँ है वह पत्र, उसमें मैंने क्या लिखा है, देखो उसको पढ़ो, ऐसा गुणपाल बोला ।

महाबल:- पत्रमानीयोपदर्शयामास तस्मिंस्तदेव लिखितं यत्खलु कृतम्।

अर्थ - महाबल ने पत्र लाकर, दिखलाया, उसमें वैसा ही लिखा था जैसा कि किया था ।

गुणपाल :- तद् दृष्ट्वा शोचितुं लग्नस्तावत् । अहो मत्कृतप्रमादस्यैव फलमेतत् यदुपस्थितमस्माकं प्राणपीडनाय । अहो मयापि कीदृशी विक्षिप्तता कृता यत्किलानुस्वारस्य स्थाने स्फुटमाकारस्य मात्रा धृता, सैव मम मनोवनदहनाय दवज्वाला । रूपेण प्रसृता । यत: किल -

अर्थ - उस पत्र के लेख को देखकर गुणपाल ने मन में विचार किया कि अहो मेरी ही गलती का परिणाम है जोकि आज यह हम लोगों के प्राणों को पीड़ा देने के लिये आ खड़ा हुआ है । देखो मैंने कैसा पागलपन किया, कि अनुस्वार के बदले में साफ साफ आकार की मात्रा लगा दी । वही तो मेरे मन रूप वन को जलाने के लिये दावाग्नि की ज्वाला बन गई है । क्योंकि -

वाचयेत् स्वयमेवादौ लिखित्वा पत्रमात्मवान् ।
प्रेषयेत् पुनरन्यत्र परथाऽनर्थ ~~उद्भवेत्~~ ।।४।।

अर्थ - समझदार आदमी को चाहिये कि जो कोई भी पत्र लिके, उसको एक बार स्वयं जांच लेवे तब फिर उसको जहाँ भेजना हो भेजे, नहीं तो उल्टा बिगाड़ होने की सम्भावना रहती है ।

इति नीतिविदां सूक्तस्यावहेलना मया शीघ्रकारिणा कृता, अनेन तु भद्रशीलेन मदाज्ञैव शिरसि सन्धृता, अयन्तु ममैव प्रमादो येनानेन मम मनोदाहकेन ममाज्ञा वृता ।

अर्थ - यह जो नीति के जानकारों का कहना है उस पर मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया, शीघ्रता में पड़कर मैंने बिना बांचे ही पत्र दे डाला यह मेरी ही तो गलती हैं, जिससे कि इस मेरे मन के जलाने वाले सोमदत्त ने ही मेरी लड़की को विवाह लिया । विचारे इस भोले स्वभाववाले महाबल का क्या दोष है, इसने तो मेरी आज्ञा का पालन ही किया है ।

निवारणायाहेर्नाग – दमनीहोररीकृता ।
सैव नागस्वरूपेण भूत्वाऽहो दशति क्षणे ॥५॥

अर्थ - आश्चर्य तो यह है कि नाग से बचने के लिये जो नाग दमनी नाम की जड़ी लेकर के पास में रखी थी वही समय पर नाग होकर खा गई है ।

एकेन दैवज्ञेन कस्मैचिन्नराय निवेदितं यत्किल नागदंशनेन भवतो मृत्युर्भविष्यतीति तच्छुत्वा तेनेह लोहमयं वज्रदृढं निश्छिद्रं दुर्गं कारयित्वा तन्मध्ये स्थित्वाऽग्रतो नागदमनी मणिं च धृत्वा स्थितिः कृता यतोऽत्र नास्तु नागस्यावकाशोऽपीति । किन्तु समये नागदमनी नाम मणिरेव नागरुपेण भूत्वा तं तदा दृष्टवतीति । तथैवासावप्यवसरो जातोऽस्माकम् ।

अर्थ - एक समय की बात है कि एक ज्योतिषी ने किसी एक आदमी से कहा कि आपकी मौत सर्प के काटने से होने वाली है । तब वह उस बात को सुनकर एक बड़ा ही मजबूत, बिना छेद वाला किला बनवाकर उसके भीतर रहने लग गया और अपने पास में एक नागदमनी नाम जड़ी रखली ताकि-प्रथम तो सर्प यहां आवे ही नहीं, और यदि आवे भी तो नागदमनी के सामने उसका जोर न चले । ति जब समय आया तो वह नागदमनी ही सर्प बन गई और उसे ख बस, वैसी ही बात यह हम लोगों के भी हो गई । केन्तु

प्रयतेत नरः किन्तु भविष्यति तदेव यत् । मपि
दैवेन वाञ्छ्यते भूमौ दैवाग्रे ना नपुंसकः

अर्थ - मनुष्य सदा नुकसान से बच कर नफा कमाना चाहता है, अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा करता है, करना ही चाहिए। किन्तु उसका किया कुछ नहीं होता, अपितु होता वही है जो कि दैव के विचार में आया करता है । दुनियादारी के सभी कार्यों में दैव के आगे मनुष्य नपुंसक है, अकर्मण्य है, दैव से विरूद्ध कुछ नहीं कर सकता।

स्वकृत–सत्कृत–दुष्कृत–सुस्थितेः प्रभवतस्त्रिजगत्सु हिताहिते ।
सहजमुत्कयितुं तु विकारिणः पथिलसन्तु तरामसुधारिणः ॥७॥

अर्थ - प्राणधारी संसारी जीव के कर्त्तव्य पथ में उसके स्वभाव को बदलने के लिये भले ही और कितने ही कारण-कलाप आ खड़े हो जावें, परन्तु भला अथवा बुरा तो उसी के किए हुए अच्छे या बुरे कर्म के अनुसार ही होगा ।

इति दैववादिनामभिमतमत्र स्पष्टमेव घटितमास्ते । अस्तु । नैतत्प्रकाशनीयम्। यतः-

स्वगुणं परदोषं च गृहच्छिद्राणि चात्मनः ।
वञ्चनं चावमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥८॥

अर्थ - इस प्रकार दैववादियों का कहना है वह यहां पर अच्छी तरह से घटित हो रहा है, क्योंकि सोमदत्त का बिगाड़ करने में कसर नहीं रक्खी, किन्तु उसका कोई बिगाड़ न होकर प्रत्युत अच्छा हुआ। खैर। अब इस बात को प्रगट करना ठीक नहीं । क्योंकि- अपने तो गुण को, गों के दोष को, अपने घर में किसी प्रकार की कमी हो उसको, और कहीं ठगा गया हो उसको तथा अपने अपमान को बुद्धिमान मनुष्य मुख से प्रगट न करे । ऐसा नीतिवेत्ताओं का कहना है ।

[नः प्रकटमुवाच-भद्र ? मया युवाभ्यां द्वाभ्यां सम्मतिरेव याचिता मत्कृते वरनिर्वाचने । यतः खलु -

वरमन्वेषयेद्विद्वान् कन्यायै सर्वसम्मतम् ।
तत्रापि प्रभवेद् भाया सुतश्च यदि शीलवान् ॥१॥

अर्थ - फिर वह गुणपाल प्रगट में उस अपने लड़के से कहने लगा कि भोले, मैंने तो तुम दोनों से सलाह मांगी थी कि मैंने विषा के लिये यह वर चुना है इस में तुम लोगों की क्या राय है ? क्योंकि यह नीति का कहना है कि आदमी अपनी लड़की के लिए ऐसा वर ढूंढे जिसको सब कोई सराहे, कोई भी बुरा न कहे । इसमें अपनी स्त्री और अपना लड़का भी अगर सयाना हो तो इन दोनों की सलाह तो जरूर ही ले लेना चाहिए ।

अस्तु । यत्कृतं तदुचितमेव कृतिमिति निगद्य स्वस्यान्तरङ्गं गोपयामास।

अर्थ - अस्तु जो कुछ किया सो ठीक ही किया । इस प्रकार कह कर गुणपाल ने अपने मन की बात को मन में ही छिपा कर रक्खा।

अथ च गुणपालो (मनसि) मदीयं हृदयमहो न जाने कुत: खलु विक्षिप्तमिव क्वचिदपि कार्यव्यापारे मनागपि न प्रभवति । सोमदत्तोऽधुना मम जामाता सम्भवति, पुनरपि विचारस्तन्मारणायैव जवति यत: किल तद्दर्शनमपि मनोरथोद्यानाय सततमेव दवति ।

अर्थ - इसके बाद गुणपाल अपने मन में विचारने लगा-न जाने मेरा मन एक पागल की भांति क्यों हो रहा है किसी भी काम काज में बिलकुल नहीं लग रहा है । अब तो सोमदत्त मेरा जमाई हो चुका है फिर भी मेरा विचार तो बराबर उसके मारने का ही होता है क्योंकि उसका दिखना ही मेरे मनोभावरूप बगीचे के लिये दावाग्निका काम करता है अर्थात् उसको देखते ही मेरा मन जलने लगता है।

जानाम्यपि यदेतन्निपातेन भविष्यति स्फुटमङ्गजा सौभाग्यभङ्गजाति:, किन्तु जिह्वायास्तोदापनोदार्थमुचिता किमु विषविलेपनतातिरतएव ममात्मा तु साम्प्रतमपि तद्विनाशमेव कुर्तंयाते किन्तु किं करोमि, मार्ग: कोऽपि न प्रतिभाति ।

अर्थ - यद्यपि यह बात मैं भी अच्छी तरह जानता हूँ कि उसके मार देने से मेरी ही लड़की विधवा हो जायेगी । फिर भी जीभ का घाव मिटाने के लिये जहर का लेप कर लेना ठीक थोड़ा ही है ? मतलब विष का लेप करने से जीभ का फोड़ा मिटता हो किन्तु उस लेप से अपनी तो जान जाती है कि नहीं ? तब फिर वह लेप किस काम का। इसी प्रकार सोमदत्त से विषा का सौभाग्य मेरे क्या काम आयेगा । इसलिये मेरा मन तो अब भी उसे मारने को ही है । किन्तु क्या करुँ, कोई भी उपाय नहीं दीखता, जिससे कि उसे मारूँ ।

वाढं प्रातरेवास्ति नागपञ्चमी तामाश्रित्य भविष्यति ममाजीर्णस्य वमि: पुराद्‌बहिर्वर्तते नागमन्दिरस्य भ्रमिस्तत्र तिष्ठति योऽधुना मातङ्गोऽसंयमी तदुपयोगतो भवेच्चेदस्तु किलायं द्रुतमेव यमसमागमीति विचार्य सोमदत्तं समाहूय गुणपालो जगाद भो महाशय ? अहन्तु राजकार्यवशवर्तितया गन्तुमसमर्थ:, किन्तु दिनोदयात्प्रगेव नागमन्दिरेऽर्चनासामग्री भवितुं योग्या, महाबलोऽप्यत्र नास्त्युपस्थितो न जाने क्व गतोऽस्ति, सायङ्कालश्च जात:।

अर्थ - हाँ एक बात तो है, कल दिन नागपच्चमी है उसको लेकर मेरे अजीर्ण का वमन हो जाय तो हो सकता है । क्योंकि नगर के बाहर में जो नागदेवता का मन्दिर है और उसके पास में ही जो इस समय चाण्डाल रहा है वह बड़ा क्रूर है, उससे बात चीत करके उसके द्वारा होतो हो सकता है कि यह मारा जावे । इस प्रकार सोचकर उसने (गुणपालने) सोमदत्त को बुलाकर कहा कि महाशयजी, क्या करना, सवेरे नागपञ्चमी आ गई, इसलिये नागमन्दिर में पूजा-सामग्री की जरूरत पड़ेगी । किन्तु एक आवश्यक राजकार्य है और महाबल यहाँ पर है नहीं, न मालूम कहाँ चला गया शाम हो गई, वहाँ सामग्री जरूर भेजना है ।

सोमदत्तो जगाद-पूज्यवर, अहं गन्तुमर्हामि ।

अर्थ - यह सुनकर सोमदत्त बोला-पूज्यवर, मैं चला जाऊँ ?

गुणपाल:- ननु भवन्तं प्रेषयितुमनुचितमनुस्मरामि ।

अर्थ - गुणपाल बोला- नहीं, आपको भेजना मैं उचित नहीं समझता. आप क्या जावें ।

सोमदत्त:- किमनौचित्यमत्र, किमहं भवतां पुत्रो नास्मि

अर्थ - सोमदत्त ने कहा - क्यों इसमें क्या अनुचित बात है, क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ?

गुणपाल :- तदा पुनर्भवतिमिच्छेति कथयित्वा द्रुतमेव तत्र गत्वा प्रच्छन्नतया चाण्डालमनुशास्ति स्म यत्किलाधुना पूजासामग्रीपुरस्सरं यः कोऽपि समागच्छति सोऽस्माकमरिरिति संस्थापनीयः ।

अर्थ - गुणपाल बोला- तो फिर आपकी इच्छा, जा सकते हो, इस प्रकार सोमदत्त से कहकर फिर वहाँ से चला और चाण्डाल के पास गुप्त रूप से जाकर कहने लगा कि देखों अभी-अभी अपने हाथ में पुजा की सामग्री लिये हुये एक आदमी आ रहा है वह हम लोगों का दुश्मन है अतः उसे मार डालना ठीक है ।

चाण्डाल:- (स्वगतं) श्रीमानयं भूपतेः प्रधानपुरुषोऽस्य शासनं चेन्न करोमि कुतो वसामि । प्रकटं पुनराह-कथमिति समुत्तिष्ठेत्तस्य निरपराधस्य सहजस्वमार्गगामिनश्चोपरि किला सौ वाहः । प्रतिकूलभावमभिगन्तुमर्हश्च तथा कृतेऽयं सर्वोऽपि लोकप्रवाहः ।

अर्थ - चाण्डाल ने गुणपाल की बात सुनकर अपने मन में विचार किया कि ये महाशय हमारे महाराज के खास आदमी हैं, यदि इनका कहना नहीं करता हूँ तो फिर यहाँ पर रह कैसे सकता हूँ । फिर उसने गुणपाल से प्रगट में कहा कि महाशय, आप कहते हैं सो तो ठीक है। किन्तु अपने रास्ते से चलने वाले मुझे कुछ भी नहीं करने वाले बेकसूर के ऊपर मेरा हाथ कैसे उठेगा, और मानलो मैंने उसे मार भी दिया तो फिर प्रजा के सभी लोग मेरे विरोध में हो जावेंगे तब मैं क्या करूँगा?

गुणपाल :- **लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।**
लोभान्मानश्च माया च लोभः पापस्य कारणम् ॥११॥

इति स्मरन् दीनाराञ्जलिमुष्ठि दत्वा जगाद-मित्र ? कार्यमिदन्तु भवता सम्पादनीयमेवेति ।

अर्थ - चाण्डाल की बात को सुनकर गुणपाल को एक बात याद आई कि लोभ से आदमी गुस्सा करता है, लोभ से काम विकार जागता है, लोभ से मान और मायाचारी किया करता है लोभ न करने योग्य सभी कामों को करवा लेता है । यह लोभ सभी पापों का कारण है। ऐसा विचार करते हुए उसने एक अशरफियों की थैली चाण्डाल के हवाले की और बोला कि - मित्र चाहे कैसे भी करो यह कार्य तो आपको करना ही पड़ेगा ।

चाण्डालः (स्वमनसि) **टका कर्म टका धर्मः टका हि परमं पदम्।**
यस्य पार्श्वे टका नास्ति सोऽसौ टकटकायते ॥१२॥

अर्थ - चाण्डाल ने मन में सोचा कि पैसे से ही दुनियाँ के सब काम चलते हैं, पैसे से ही धर्म होता है पैसा ही सब से बड़ी चीज है, जिसके पास पैसा नहीं, वह देखते रहता है कुछ नहीं कर पाता

किञ्च-**यस्यास्ति वित्तंस नरः कुलीनः कृतज्ञ एवं श्रुतिमान् प्रवीणः।**
स एव वक्ता स च दर्शनीयः स्वर्णे गुणास्तत्र मितोऽनणीयः ॥१३॥

अर्थ - जिसके पास पैसा है जो धनवान् है वही कुलीन समझा जाता है, वही गुणों को पहिचानने वाला, वही सुनने वाला वही समझदार वही बोलने में चतुर और वही देखने योग्य हो जाता है यह सभी बलिहारी एक सोना की है ।

इद पुष्कलं धनं । वेषं परावृत्य मारयिष्यामि पुनश्च देशान्तरमपि गत्वा कुत्रचित् सुखेन कालक्षेपं कर्तुमर्हामि किमहं स्त्रीपुत्रादिमानेकाक्येव तु भवामि, यत्रैव पतितं मुशलं तत्रैव क्षेम कुशलं चेति यत्रैव यास्यामि तत्रैवोचितम् ।

अर्थ - और यह तो धन भी थोड़ा नहीं है, इतना है कि मैं वेश बदलकर उसे मार दूँ और फिर यहाँ, नहीं बल्कि देशान्तर में भी जाकर जहाँ कि कोई जानने भी न पावे वहाँ पर सुख से समय बिता सकता हूँ । अकेला ही तो हूँ कौन मेरे बाल बच्चे रो रहे हैं, या स्त्री है कि जिसको कहाँ कहाँ लिए फिरूँगा । अकेली जान ही तो है जहाँ पड़ा मूसल, वही खेम कुशल, इस कहावत के अनुसार जहाँ जाऊंगा वहीं ठीक है ।

प्रकटमवाच-तथास्तु । यथास्थानं गन्तव्यं भवतोक्तं कर्तुन्तु युज्यत एव।

अर्थ - फिर उसने प्रगट में कहा कि ठीक है आप जाइये, अपना काम कीजिए, आपका कहा हुआ तो करना ही पड़ेगा ।

सोमदत्तः उपासनाविधिमादाय प्रस्थितः सन् वर्त्मनि गेन्दुकक्रीडानुरक्तं महाबलमवलोकयामास ।

अर्थ - इधर पूजन की सामग्री लेकर सोमदत्त चला सो मार्ग में गेंद खेलते हुए महाबल से भेंट हो गई ।

महाबलः (सोमदत्तं दृष्ट्वा) क्व यातिं भवानिति !

अर्थ - सोमदत्त को देखकर महाबल बोला कि आप कहाँ जा रहे हैं ?

सोमदत्त :- पूजनपरिस्थितिमर्पयितुं नागमन्दिरमनुयामि ।

अर्थ - सोमदत्त ने जवाब दिया कि पूजन-सामग्री देने के लिए नागमन्दिर जा रहा हूँ ।

महाबलः- श्रूयतां तावदहं यास्यामि, तत्र भवान् पुनरत्रैव गेन्दुकक्रीडां दर्शयतु किलास्मरपक्षमादाय । अहमिह न सहक्रीडकेभ्यः पारयामि सार्द्धम्।

भवाँस्तु पुनरतीव दक्ष इति निगद्य तत्करतो बलात्सामग्रीमुपादाय जगाम ! यावच्च मन्दिरद्वारदेशं समवाप तावदेवासिप्रहारेण जीवननि:शेषतामनुबभूव ।

अर्थ - महाबल बोला-सुनो, वहाँ पर तो मैं जाऊँगा, आप तो इतनी देर मेरी पक्ष को लेकर गेंद खेलते रहें । क्योंकि मैं अपने इन साथियों के साथ गेंद खेलने में समर्थ नहीं हो सका । आप गेंद खेलने में अति दक्ष हैं । इस प्रकार कहकर उसके हाथ में से जबरन पूजा के सामान को लेकर महाबल आगे चला और जहाँ वह मन्दिर के द्वार तक पहुँचा कि तलवार की चोट खाकर मारा गया ।

यत: खलु--पित्रा सम्पादितं कर्म फलति स्म सुपुत्रके ।
पीतं मूलेन पानीयं फले व्यक्तीभवत्यहो ।।१४।।

अर्थ - देखो यह बात कैसी हुई कि पिता के द्वारा सम्पादित दुष्कर्म का फल भी बिचारे पुत्र को भोगना पड़ा । ठीक ही है मूल जड़ के द्वारा पिया गया वृक्ष का पानी फल में आकर प्रगट होता है ।

किञ्चित्क्षणानन्तरमेव पौरैवर्गे कलकलशब्दो बभूव यदहो किलाद्य नगरान्नागमन्दिरं गतवति वर्त्मनि कोऽपि मनुष्य: केनापि मारितो विधुन्तुदेनार्दितोऽमृतांशुरिव वर्तते । तदेतद् वृत्तान्तं गुणपालस्यापि कर्णे समाजगाम ।

अर्थ - थोड़ी देर के बाद ही नगर के लोगों में कोलाहल मच गया अरे, आज तो बड़ा बुरा हुआ-अपने शहर से जो रास्ता नाग मन्दिर को जाता है उस रास्ते में किसी दुष्ट के द्वारा मार दिया गया हुआ एक सुन्दर नवयुवक पड़ा है । वह ऐसा प्रतीत होता है मानों राहु के द्वारा मर्दित चन्द्रमा ही हो । यह बात फैलते-फैलते गुणपाल के कानों तक भी पहुँच गई ।

गुणपाल:- मनसि प्रसन्नो भवन् जगाद यत्किलाद्यास्माकं हृदयकण्टकस्योच्छेदो जात: । बहुप्रयासानन्तरं समयमेत्य रामेण रावणो हत इति ।

अर्थ - तब मन ही मन प्रसन्न होकर गुणपाल कहने लगा कि आज हमारे दिल का कांटा दूर हुआ है । बहुत कुछ परिश्रम करने के बाद समय पाकर के श्री रामचन्द्र ने रावण को मार पाया था, वैसे ही मैंने भी अन्त में सोमदत्त को मार ही लिया ।

साम्प्रतमेवान्नं पानं चानुकूलतयाङ्गीकरिष्याम्यहमिति सम्भावयन् गृहं यावदागच्छति स्म तावत् सोमदत्तं तत्र सुखेन सुमपस्थितं दृष्ट्वा साश्चर्यचकितचित्तः सन् पपृच्छ-किमुतार्चापरिचितिं दातुंन गतो भवानिति।

अर्थ - आज मैं सुख से खाना पीना करूँगा, इस प्रकार सोच कर वह जब अपने घर पर आया तो देखता है कि सोमदत्त तो वहाँ पर आराम से बैठा हुआ है, तो फिर यह क्या बात हुई, इस प्रकार आश्चर्य में पड़ कर उसने सोमदत्त से यों पूछा कि क्या आप पूजा-सामग्री लेकर अभी तक नहीं गये ?

सोमदत्तः गन्तुं प्रतिस्थतोऽहं किन्तु मार्गमध्यादेव बलादादाय महाशयो महाबलस्तत्र जगामेति ।

अर्थ - अजी, मैं गया तो था, किन्तु बात ऐसी हुई कि रास्ते में मुझे महाशय महाबल मिल गये, सो उन्होंने जबरन मेरे हाथ में से सामग्री छीन कर वे स्वयं देने को चले गये, मैं क्या करूँ ?

गुणपालः- अहो किलैतदप्यस्माकं शिरस्येव वज्रमापतितमाभातीति मनसि निधाय जगाद-सपुनरागतो न वेति ।

अर्थ - यह वज्रपात भी हमारे ही सिर पर आकर पड़ा प्रतीत होता है ऐसा अपने मन में सोच कर गुणपाल ने फिर उससे पूछा कि वह लौट कर आया कि अभी तक नहीं आया ?

सोमदत्तः- एतत्क्षणं यावत्तु न समागतः सविदस्माकं हृदयारविन्दाय रविर्यस्य सकलजनमनोहारिणी भवति च्छविः ।

अर्थ - अभी तक तो वह बुद्धिमान् आया नहीं जो कि हम लोगों के हृदय कमल के लिये सूर्य के समान है, वह प्यारा है, जिसकी कि छवि ही सब लोगों के मन को हरने वाली है ।

गुणश्री:- कदाचित् स एव न व्यापन्न: स्यात् ?

अर्थ - यह बात सुनकर गुणश्री बोली तो फिर कहीं वही न मारा गया हो ?

गुणपाल: खलितोत्तमाङ्ग एव करकोपनिपात: सम्भाव्यते ।

अर्थ - और क्या होगा गञ्जे के सिर पर ही तो ओले पड़ेंगे, ऐसा गुणपाल ने कहा ।

गुणश्री :- अन्विष्यतामपि तु गत्वेति यावज्जगाद तावदेवा-नुसन्धानकैरागत्य निवेदितं यत्किल श्रेष्ठिकुमारो महाबल एव स समस्ति, इत्येवं श्रुत्वाऽतीवविषण्णवदना जाता ।

अर्थ - गुणश्री ने कहा कि जाकर देखना भी तो चाहिए । इतने ही में तो छान-बीन करने वाले लोगों ने आकर कहा कि यह मारा जाने वाला गुणपाल सेठ का लड़का महाबल है ऐसा सुनकर वह बहुत दु: खित हुई ।

विषा-कुतोऽस्त्यहो मम सहोदरो भ्राता कथमस्तु तेन विनाऽधुना साता।

अर्थ - यह सुनते ही विषा भी बहुत चिन्तित हुई और कहने लगी- अरे कहाँ गया वह मेरा भाई, उसके बिना मुझे तो चैन ही नहीं हो सकती।

सोमदत्त :- माँ विनाऽद्यैव तस्य सस्थिति: समाख्याताऽन्यदा तु मयैव समं सर्वत्र स प्रयाता भगवान् भद्रं पूरयतु जगत्-त्राता ।

अर्थ - सोमदत्त बोला - देखो आज ही वह मेरे बिना अकेला गया और आज ही ऐसा हुआ अन्यथा और दिन तो जहाँ भी जाता था, मेरे साथ बिना नहीं जाता था । भगवान् आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
लम्बोऽत्येति महाबलस्य मरणप्रख्यापकः पञ्चम -
स्तेनोक्तेऽत्र दयोदये मतिमतामप्यस्तु चिन्ताश्रम: ॥५॥

अर्थ - इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुज और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुई वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी, पं. भूरालाल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस दयोदयचम्पू में महाबल के मरण का वर्णन करने वाला पाँचवां लम्ब समाप्त हुआ ।

卐 षष्ठो लम्बः 卐

गुणश्रीः विम्बादप्यधिकारुणाधरा कमलादपि कोमलतरकरा समुत्तुङ्गस्तना-भोगसंलग्नकान्तिमद्धारपरिसरा सहजप्रेमतत्परा नरान्तररहितप्रदेश एकाकितया सन्निषण्णमतिशयविषण्णमवलोक्य हिमाहतसरोजसंकाशवदनं रतिरहितमिव मदनं करतलविन्यस्त कपोलमूलतयाऽत्यन्तः।कसदनं निजप्राणधनं प्रति जगाद किरन्तीव कुसुमानि कुन्देन्दुधवलदशनकान्त्या हरन्तीवान्तस्तमःपटलं तस्य सा युवतिः स्वामिन् किन्नु कारणं यतो भवानुद्विग्नमनाः प्रतिभाति, तदहमपि ज्ञातुमर्हामि ।

अर्थ - बिम्ब फल से भी अधिक लाल है ओठ जिसके, कमल से भी अधिक कोमल हैं हाथ जिसके, उभरे हुये स्तनमण्डल पर लगा हुआ है चमकीला और लम्बा हार जिसके और जो सहज स्वाभाविक प्रेम करने वाली है ऐसी युवावस्था को प्राप्त हुई गुणश्री नाम की सेठानी, जहाँ पर दूसरा कोई भी आदमी नहीं है ऐसे एकान्त स्थान पर अकेले ही बैठे हुए बहुत ही उदास अतएव हिमपात से मारे हुए कमल के समान मुरझाया हुआ है मुख जिसका, अपनी हथेली पर गाल रखकर जो अत्यन्त शोक-सन्तप्त है, अतएव रतिदेवी से रहित कामदेव के समान मालूम पड़ रहा है ऐसे अपने स्वामी को देखकर कुन्द के फूलों के समान या चन्द्रमा के समान श्वेत अपने दातों की कान्ति से फूल से बखेरती हुई और अन्तरङ्ग के अन्धकार को हरती हुई सी बोली-हे स्वामी आप अति उदास चित्त दिख रहे हैं इसका कारण है सो मैं जानना चाहती हूँ ।

गुणपाल :- कस्याप्ययग्रेऽहमात्मनो विषादहेतुमभिव्यञ्जयितुं नार्हामि ।

अर्थ - गुणश्री की बात सुनकर गुणपाल बोला कि मेरी चिन्ता का कारण मैं ही जानता हूँ, दूसरे किसी को भी नहीं कह सकता हूँ ।

गुणश्री :- कस्याप्यपरस्याग्रे निवेदयितुं न भवतुं भवान्विकलोऽहन्तु भवतामङ्गतयैवानन्यतामधितिष्ठामि कथं न पुनर्मयापि ज्ञातुं योग्यमस्तु तत्कारणम् ।

अर्थ - गुणश्री बोली ठीक है, आप किसी दूसरे को अपनी विकलता का कारण न बतावें, यह बात ठीक है । किन्तु मैं कोई दूसरी थोड़ी हूँ मैं तो आपका ही अङ्ग हूँ फिर मुझे बताने में क्या नुकसान है ।

गुणपाल: यद्यपि नास्ति कथयितुं मनस्कारस्तथापि तवाग्रहश्चेत्कथयामि हे प्राणप्रिये मदन्तरङ्गादभिन्नक्रिये यत्प्रतीकारमृतेऽहं म्रिये श्रृणु तावत् ।

वैरिमारणरूपेण मारयित्वाऽङ्गजं निजम् ।
विपीदामीव भो भार्ये शून्यागारप्रपालकः ॥१॥

अर्थ - तब गुणपाल कहने लगा - हे प्राणप्यारी, यद्यपि मैं अपने मन की बात को कहने की इच्छा नहीं करता हूँ, फिर भी जब कि तेरा आग्रह देख रहा हूँ तो कहता हूँ क्योंकि तू मेरे विरूद्ध करने वाली नहीं है । इसलिये सुन, जिसका कि प्रतीकार हुए बिना मैं जी भी नहीं सकता। बात यह है कि - जैसे एक धर्मशाला के पालक ने अपने बैरी को मारना चाहा और मारा गया उसके बदले उस का लड़का, बस यही बात मेरे पर भी बीती है । इसलिए मैं भीतर ही भीतर जल रहा हूं, अब भी बैरी को मारे बिना चैन नहीं ।

गुणश्री:- कथं पुनरेतदिति स्पष्ट करोतु भवान् मादृश्या अवलाया: पुरत:।

अर्थ - गुणश्री बोली यह कैसी क्या बात है सो जरा स्पष्ट रूप से कहो तो समझ में आवे, मैं स्त्री जाति इस आपके इशारे को क्या समझूँ ।

गुणपालः- सम्वदति स्म किलैकदा कस्यांचिद् धर्मशालायामेकः प्रवासी विश्राममादातुमवततार स च तदुपरक्षकाय दीनारमेकं दत्वा शयनार्थं पर्यङ्कं प्रत्यादातुं निजगाद । उपरक्षकस्तु प्रवासिनं बहुधनं विज्ञानय तदपहर्तुं तन्मारणाय मनः कृत्वा प्रतिजगाद-यद्भवान् कार्यान्तरं सम्पाद्य समागच्छतु तावत्सविस्तरं पर्यङ्कमुपस्थापयामि किलेति कथनेन प्रवासिनि ग्रामावलोकनार्थं गते सति कूपस्योपरि गुणहीणां खट्वां धृत्वा तस्या उपरि विरतरं विस्तारयामास यावत् तावदेव वायुसेवन कृत्वाऽऽगतस्तस्यैव पुत्रः समागत्य तदुपरि सहसा शयनेन कूपे निपत्य मृत्युगादिति। तथैव मया सोमदत्तस्य प्रहरणार्थमुप-युक्तेनोपायेन महाबलो नामाङ्गजोऽत्र पञ्चतां नीतः ।

अर्थ - गुणपाल बोला - एक समय किसी एक धर्मशाला में विश्राम करने के निमित्त एक मुसाफिर आकर ठहरा, उसने उस धर्मशाला के रखवाले से अपने सोने के लिये एक पलंग मांगा और उसके बदले उसने उसको एक अशर्फी दी । इस पर उस धर्मशाला के रखवाले ने उस मुसाफिर को धनवान् जान कर उसके धन को छीनने के लिए उसे मारने का विचार किया । इसलिये उससे बोला - आपको और कोई काम हो वह कर आइये । मैं आपके लिये पलंग और उसके ऊपर बिस्तर बिछा कर तैयार करता हूँ । ऐसा कहने पर मुसाफिर तो गाँव में घूमने को चला गया। पीछे उस धर्मशाला के रखवाले ने कुएँ के ऊपर एक बिना बुनी खाट डाल कर उसके ऊपर बिस्तर बिछा दिया । इतने में ही उसी का लड़का जो कि हवाखोरी करने को गया हुआ था एकाएक आकर उसके ऊपर लेटा और कुएँ में गिर कर मर गया । वैसे ही मैंनेभी जो सोमदत्त को मारने के लिए उपाय किया उससे महाबल को मरा हुआ देख कर दुः खी हूँ।

गुणश्री :- कथमुत जामातरमपि मारयितुं भवादृशो महाशयस्य किल विचारः समजायतेति जिज्ञासामुखरीकरोति मां भो प्रभो ।

अर्थ - गुणश्री बोली फिर भी यह बात मेरी समझ में नहीं आई कि आप सरीखे सयाने आदमी का विचार सोमदत्त को भी मारने का क्यों हुआ क्योंकि वह तो आपका जामाता है ।

गुणपाल :- नास्त्यसावस्माकं जामाता किन्त्वामनस्य प्रजामाताऽस्य नाम श्रवणे नैव प्रणश्यति साताऽमुं कदा कवलयिष्यति मेकलकन्यकाभ्राता किलेत्येव शोचयितुं मम चेतसि साम्प्रतं चिन्ता सञ्जाता ।

अर्थ – गुणपाल कहने लगा कि यह हम लोगों का जमाई नहीं है किन्तु यह तो हम लोगों को दुःख की परम्परा को उत्पन्न करने के लिये पुत्रोत्पत्ति के लिये माता के समान है जिसके कि नाम को सुनने मात्र से ही हम लोगों की साता नष्ट हो जाती है इसलिये इसे किस दिन यमराज भक्षण करेगा यही विचार करने के लिये मेरे मन में चिन्ता हो रही है ।

गुणश्री :- भवानेव किलैनं जामातरं निर्णीतवान् कथं पुनरकारणमेव विपरीतं गीतवान् किलेत्याश्चर्यो मनः परीतवान् ।

अर्थ - गुणश्री ने कहा - आपने ही तो इसे जामाता चुन कर भेजा था, फिर आज बिना ही कारण ऐसी उल्टी बात क्यों कर रहे हैं, इसी बात का मेरे मन में आश्चर्य है ।

किमत्र तावत् परिवर्त्ति रहो जलप्रवाहोऽग्निमधीतवान हो ।
तमस्त्वमङ्गीकुरुते तमोपहो मनो वितर्कस्य समाश्रयं वहोः ॥ २ ॥

अर्थ - अहो आज कल ही अग्नि का रूप धारण कर रहा है और सूर्य अन्धकार दे रहा है ऐसा क्यों हुआ इसमें कौनसा रहस्य है इसको जानने के लिये मेरे मन में एक बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है।

गुणपाल **जिह्रेमिपत्नी सुतवत्प्रवक्तुं तां चेह या भाति रहस्यसृक् तु ।**
निष्कर्ष एकोऽयमुताहमेव तमः समस्तूत तमोरिदेवः ॥ ३ ॥

अर्थ - गुणपाल बोला - जैसे कि एक आदमी मर कर अपनी ही स्त्री के उदर से पैदा हो गया । अब वह उसे माता कहे या स्त्री कुछ कहने की बात नहीं है । वैसे ही इस प्रकृत बात में भी जो रहस्य

छिपा हुआ है उसे कहते हुए मुझे लज्जा आती है किन्तु सबका मतलब एक ही है या तो यह ही रहेगा, या मैं ही । जैसे या तो अन्धेरा ही रह सकता है या सूर्य ही, दोनों एक जगह एक साथ नहीं रह सकते।

गुणश्री :- **सोमशर्माङ्गनेवाहं साहाय्यं ते तनोमि भो ।**
नारी नामार्द्धमङ्गं चेन्नरस्य भवति प्रभो : ॥४॥

अर्थ - यदि ऐसा है कि या तो सोमदत्त ही रहेंगे या आप ही, तो फिर मैं ऐसा ही करूँगी कि सोमदत्त न रहे क्योंकि मैं आपकी अङ्ग हूं आपकी गति, सो मेरी गति, मैं आपकी नारी हूँ इसलिये आपकी सहायता, करना मेरा सबसे पहला कर्त्तव्य है जैसे कि पूर्व जमाने में सोमशर्मा नाम के पण्डितजी की सहायता उनकी स्त्री ने की थी ।

गुणपाल :- कोऽयं सोमशर्मा, भार्यय ऽस्य च कीदृशी सहायता कृता।

अर्थ - यह बात सुनकर गुणपाल बोला कि इस सोमशर्मा का क्या परिचय है और उसकी पत्नी ने उसकी किस प्रकार सहायता की, सो बताना चाहिये ।

गुणश्री :- समस्ति कोशाम्बिका नाम नगरी तस्य राजा प्रजापालस्तस्य राजपण्डित: सोमशर्मा । अथ चापरो धर्मशर्मा नाम ब्राह्मण: काशिकातो विद्याध्ययनं कृत्वा वेदवेदाङ्गपारङ्गत: सन् स्वकीयां वादकण्डूया- मुद्धर्तुकामस्तत्रागत्य सोमशर्माणं वादे जितवान् । अतस्तस्य स्थाने परावृत्य धर्मशर्माणमुपस्थापयितुमुपचक्राम राजा। तदा पुन: सोमशर्मण: पत्नी धर्मशर्माभिधं कोविदं जितवती किलाजीवनस्थैर्यं चकारेति श्रूयते।

अर्थ - पति की बात सुनकर गुणश्री कहने लगी - देखिये एक कोशाम्बिका नाम की नगरी है उस नगरी का पालन करने वाला किसी समय प्रजापाल नाम का राजा हो गया है उसके सोमशर्मा नामक पण्डित था जो कि राज की जागीर खाता था । अब एक धर्मशर्मा नाम का दूसरा पण्डित था जो कि काशी जाकर वेद और वेदाङ्गों में पारङ्गत होकर वाद

की अभिलाषा रखते हुये उसे पूरी करने को वहाँ आया और उसने सोमशर्मा को बाद में जीत लिया। इसलिये राजा ने उसके स्थान पर बदलकर धर्मशर्मा को रखने का इरादा कर लिया। उस समय सोमशर्मा की स्त्री ने धर्मशर्मा नाम के पण्डित को जीत करके उसने उस बिगड़ती हुई आजीविका को बचाया, ऐसा सुना जाता है ।

गुणपाल :- आर्ये, तथैव भाव्यं भवत्यापीति समनुशास्ति नश्चेतः ।

अर्थ - यह सुनकर गुणपाल बोला- ठीक है आर्ये, फिर तो जिस प्रकार सोमशर्मा की स्त्री ने उसकी सहायती की, उसी प्रकार तुमको भी मेरी सहायता करना चाहिए ।

गुणश्री :- श्रृणु नाथ ? **विपदि जातु नरोऽस्तु न विक्लव-**

स्तदिव सम्पदि सम्मदसंस्तवः ।

परिकरोतु यदात्ममतोचितं,

किमिह कातरचित्तवतो हितम् ॥ ५ ॥

अर्थ - गुणश्री बोली - देखों स्वामी, मनुष्य को चाहिए कि अपने उद्देश्य के अनुकूल चेष्टा करते हुए चले, यदि उसमें किसी प्रकार की अड़चन आ उपस्थित हो, तो उससे घबरावे नहीं और सफलता होने पर फूल कर कुप्पा न बन जावे । क्योंकि सफलता में फूल जाना और आपत्ति आने पर रोना, यह तो कायरों का काम है जिनका कि कभी भला नहीं हो सकता ।

गुणपाल : भद्रेऽहमपि जानामि तावदेतत्तु किल-

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी -

दैवेन देयमिति का पुरूषा वदन्ति ।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्तया,

यत्ने कृते यदिन सिद्धयति कोऽत्र दोषः ॥

अर्थ - गुणपाल कहने लगा कि हे भोली, यह बात तो मैं भी जानता हूँ कि-जो मनुष्य अपने उद्देश्य के अनुकूल उद्योग करता है उसे ही सफलता प्राप्त होती है केवल दैव के भरोसे पर बैठे रहना तो कायरों का काम है । हाँ, दैव के भरोसे पर न रह करके शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी यदि काम न हो तो फिर इसमें उसका क्या दोष है ।

तथापि किल साफल्याभावेऽपायादपेतुमुपायोऽन्वेषणीय एव । शक्तितघातेन सम्मूर्च्छितेऽनुजे दाशरथिरपि महात्मा कथमिव विह्वलोऽभूत् यत्रागत्य चकारविशल्या साहाय्यमिति ।

अर्थ - फिर भी अपने काम में सफलता न मिलने पर सफलता क्यों नहीं मिली इसमें क्या कमी रही, वह कमी कैसे पूरी हो, इस बात का तो विचार करना ही पड़ता है । देखो कि जब शक्ति की चोट से श्रीरामचन्द्रजी का छोटा भाई लक्ष्मण बेहोश होकर गिर पड़ा था, तो वहाँ पर वे महात्मा रामचन्द्र भी कैसे विकल हो गये और वे सोचने लगे थे कि अब क्या किया जाय, बिना लक्ष्मण के मैं इस युद्ध में सफलता पा जाऊँ यह कठिन है । तब विशल्या ने आकर उनकी सहायता की थी अर्थात् लक्षमण को जीवित कर दिया था और अन्त में वे सफल हुए थे । वैसे ही मैं सोच रहा हूँ कि अब क्या करना चाहिए ।

गुणश्री :- भवन्त पश्यन्तस्तिष्ठन्तु, मया क्रियते किलोपायस्तस्मै-

प्रकृतिः करोति कार्यं सुमहदहङ्कारपूर्वकं मानात् ।
पुरुषश्चेतयते पुनरेवं समयोऽपि सांख्यानाम् ॥ ५ ॥

अर्थ - गुणश्री कहने लगी ठीक है, आप तो देखते रहें कि क्या होता है । मैं इसका उपाय करती हूँ सो देखें । बात ऐसी है कि सांख्यमत भी तो कहता है कि पुरुष तो केवल अनुभव मात्र करता है, किन्तु संसार के महान् अहङ्कार आदि कार्यों को तो प्रकृति ही उत्पन्न करती है ।

इत्येवं भर्तुः मनः सन्तोषमानीय पुनरेकदा महानसालये प्रविष्टा सती यवागूनिष्पादनार्थं सकलकुटुम्बस्योदरपोषणनिमित्तं वारि-भरितां स्थालीं चुल्लीसङ्गतां

कृत्वा सोमदत्तमुद्दिश्य विषमिश्रतमोदकचतुष्टयं सम्पादयामास यावत्तावदेवात्यन्तवेगेन दीर्घशङ्काकुला सम्भवती तत्रात्मजामुत्थाप्य स्वयं बहिर्देशं जगाम ।

अर्थ - इस प्रकार उस गुणश्री ने अपने स्वामी के मन को धीरज दिया और इसके बाद फिर किसी एक दिन वह रसोई घर में रसोई बनाने लगी, तो घर के और सब लोगों के लिये तो उसने खिचड़ी बनाने का विचार किया जिसके लिये उसने जल की बटलोई भरकर चूल्हे पर चढ़ा दी और इधर उसने सोमदत्त के लिये विष के मिले हुए चार लड्डू बनाकर तैयार किये । इतने ही में उसे बड़ी जोर से दीर्घ शङ्का की बाधा हो आई, तो उसने रसोई घर में तो अपनी लड़की विषा को बैठा दिया और आप जङ्गल को चली गई ।

गुणपालस्तावदेवागत्योवाच - हे बालिके, किं करोषि, क्व याता तव माता ।

अर्थ - इतने ही में गुणपाल आकर बोला - हे बेटी, क्या कर रही है, और तेरी माता कहाँ गई है ।

विषा - बहिरङ्गणमुपस्थिता मदम्बा विष्पादयामि यवागूसम्पदम्वा हे पितः ।

अर्थ - विषा ने कहा - हे पिताजी, मेरी मां तो जङ्गल गई है और मैं खिचड़ी बना रही हूँ ।

गुणपाल :- अत्यावश्यकराजकार्यवशाच्छीघ्रं गन्तुं बुभुक्षुरहं विलम्बनमिहास्त्यसहं वर्ततेऽपि तु किञ्चिदपरमपि खाद्यवस्तु नामवहम्।

अर्थ - गुणपाल बोला - मुझे तो एक बहुत ही आवश्यक राजकार्य आ पड़ा है, जल्दी ही जाना है, देरी करना ठीक नहीं, भूख लगी है, इसलिए खाकर जाऊँ तो ठीक है । सो और भी कोई खाने योग्य वस्तु है या नहीं, वही दे देवे तो ठीक रहे ।

विषा-भद्रभावेनोवाच-लड्डुकानि सन्ति खादितुमारभ्यतां तावदेवान्यदपि व्यञ्जनादि सम्भवत्येवेति कथयित्वा मोदकद्वयमर्पितवती ।

अर्थ - विषा ने सरलभाव से कहा कि लड्डू बनाये हुए रक्खे हैं आप उन्हें खाना प्रारम्भ करें, इतने में और भी शाक आदि बन जाते हैं, क्या देरी लगती है, ऐसा कहकर उसन दो लड्डू परोस दिये ।

गुणपाल:तदेतत् खादितवान् यावत्तावदेवाङ्गोपाङ्गानि तानयित्वा मुखं खलु व्यापाद्य स्फालयित्वा च चक्षुषी भूमौ निपपात ।

अर्थ - गुणपाल ने उन लड्डूओं को ज्यों ही खाया, त्यों ही अपने अङ्गोपाङ्गों को फैलाकर, मुख को पकड़कर और आँखों को भी खोलकर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा ।

विषा-सहसैव तदिदमवस्थान्तरं पितुर्दष्ट्वा-हे भगवन् किमिदं जातम्? अहो कथमिव कर्तुमारब्धवांस्तात आगम्यतां शीघ्रमेव लोकैरिहात इत्येवं पूच्चकार।

अर्थ - विषा ने एकाएक पिता की दृष्टि की और हालत देखकर इस प्रकार से पुकार करना शुरू किया कि हे भगवन्, यह क्या हो गया, पिताजी ऐसे कैसे हो गये । अरे लोगों आओ, अरे भाई यहाँ जल्दी आओ।

तच्छुत्वा - **यथेच्छमनुतिष्ठन्ति स्वस्वकार्यानुबन्धिनः ।**
समये तु समायान्ति भवन्ति पार्श्ववर्तिनः ॥ ६ ॥

इति स्मरद्भिरुपप्रदेशिभिरागत्य यावद् गृहाङ्गणं पूरितं तत्पूर्वमेव तत्र यद्भवितुं योग्यं तदभूत् ।

अर्थ - विषा की इस पुकार को सुनकर आस-पास के लोगों ने 'यों तो अपने-अपने कार्य को करते रहकर अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ रहें किन्तु अवसर आने पर जो आकर सहायता करते हैं, वे ही पड़ोसी कहलाते हैं,' इस नियम को याद करके जब तक उसके घर पर आकर देखा तो उसके पहले ही वहाँ पर जो बात होनी थी, वह हो

चुकी अर्थात् गुणपाल इस नश्वर शरीर को त्याग कर परलोक को चला गया ।

गुणश्री :- बहिर्देशत: समागताऽतर्कितोपस्थितमिदमात्मनो भीतिकरम-वसरमवेत्य सविषादं जगाद ।

अर्थ - इतने ही में गुणश्री सेठानी भी दीर्घशंका से निबट कर आ गई । उसने जिसका स्वप्न में भी विचार नहीं किया था ऐसी न होने वाली और अपने आपको दु:ख देने वाली बात को होती हुई पाया तो वह बड़े ही दु:ख के साथ कहने लगी -

उद्धूलिता धूलिरहस्करायाप्यपेत्य सा मूर्ध्नि नुरस्त्विलायाः ।
इमां सदुक्तिं वलये प्रसिद्धामुपैति मे संघटितां सुविद्धा ॥ ७ ॥

अर्थ - देखो-सूर्य के ऊपर जो धूलि फैंकी जाती है वह सूर्य तक न पहुँचकर वापिस फैंकने वाले के ही मस्तष्क पर आकर गिरा करती है, इस धरातल पर प्रसिद्ध होने वाली इस प्रकार की कहावत को आज मेरी बुद्धि स्पष्ट रूप से घटित होती हुई देख रही है ।

एणजिघांसुगोमायुरिवासौ वल्लभो मम ।
स्वयं विनाशमायाति न जातुचिदिह भ्रमः ॥ ८ ॥

अर्थ - इसमें कोई शक नहीं कि मृग को मारने की इच्छा वाला गीदड़ जैसे स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार अन्य को मारने की इच्छा वाला यह मेरा स्वामी भी स्वयं ही नष्ट हो गया ।

दर्शकजन:-कथमिदमिति स्पष्टमाचष्टाम् ।

अर्थ - एक दर्शक मनुष्य बोला- इस बात को साफ-साफ कहना चाहिये कि यह कैसे हुआ ?

गुणश्रीरुवाच-श्रूयतां तावदेकदा तन्मृदुमांसाशनलोलुपो जम्बुको मृगमेकं शस्यपूर्णं क्षेत्रं दर्शितवान् कपटप्रेम्णा । स च ततः प्रभृति नित्यमेव तत्र गत्वा

भद्रभावेन किलोदरपूर्ति कर्तुं लग्न: । कतिचिद्दनानन्तरं क्षेत्राधिपतिना तं सम्बद्ध जालप्रसार: कृतो यस्मिन्ननायासेनैव स समागत्य पतित: सन् यथा यथा निर्गन्तुं प्रयतितवांस्तथा तथात्यधिकतया बन्धनदाढर्यमभूत् । अथोपायान्तरं न ज्ञात्वा श्वासेनोदरं सम्पूर्य मृत इवाजनि तेन। कृषीबलश्च समागत्य तथाविधं तं मृतमिति विज्ञाय निःशङ्कः सन् यावज्जालं सङ्कोचयामास तावदेवोत्थाय पलायितुमारेभे हरिण: ।

अर्थ - गुणश्री कहने लगी सुनो-एक समय की बात है कि किसी एक हिरण के कोमल मांस को खाने की इच्छा रखने वाले गीदड़ ने उससे बनावटी प्रेम करके उसे ले जाकर एक धान्य का हरा-भरा खेत दिखलाया और वह उसके बाद भोलेपन से प्रतिदिन वहाँ जाकर अपना पेट-पालन करने लगा । कुछ दिन बाद खेत के मालिक ने उसे पकड़ने के लिये वहाँ पर जाल फैला दिया, जिसमें कि सहज में ही आकर वह फंस गया और जैसे-जैसे ही उसने निकलने का प्रयत्न किया वैसे-वैसे ही वह और ज्यादा जकड़ा गया। अब जब उसने अपने बचने का दूसरा कोई भी उपाय न देखा तो एक युक्ति सोच निकाली कि श्वास के द्वारा अपने पेट को फुलाकर वह मुर्दे सरीखा बन गया । किसान आया तो देखता है कि यह तो मर भी चुका है । अत: निशंक होकर उसने अपने जाल को समेटना शुरू किया कि इतने में ही उठकर हिरण भागा ।

तदा तदनु क्षेत्रपतिना प्रक्षिप्तेन लगुडेन तत्रैव तच्चरितावलोकनार्थमुपस्थित: श्रृगाल: समाहत इति ।तथैव श्रीमत: सोमदत्तस्य मारणाय गरमानीय मह्यमसावर्पितवानहं च विषान्नं सम्पाद्य सहसैवातिसारवती भूत्वा बहिर्यामि स्म विषान्नं च सरल हृदयया तनययाऽस्मै समर्पितमिति दिक् ।

अर्थ - तब उसको मारने के लिए किसान ने उसके पीछे से जो लकड़ी फैंकी वह उसे न लगकर वहाँ यह सब देखने के लिये आ खड़े हुए उसी गीदड़ के लगी, सो वह मर गया । इसी प्रकार इस मेरे स्वामी ने श्रीमान् सोमदत्त को मारने के लिये विष लाकर मुझे दिया, मैंनें विष

मिले लड्डू तैयार किये । इतने ही में मुझे दीर्घशङ्का की बाधा हो आई, इसलिए मैं बाहिर चली गई । पीछे से इसे क्या पता था इस बच्ची ने भोलेपन से वही विष के लड्डू इस अपने बाप और मेरे स्वामी के लिए परोस दिये । बस, यह ऐसी बात हुई ।

क्षुधा नश्यत्यशानस्य लुनीते वपतीव यः ।
भुङ्क्ते कर्माणि कर्तैव खनको यात्यधः स्वयम् ॥९॥

अर्थ - ठीक ही, है जो खाता है उसी की भूख मिटती है, जो बीज बोता है वह पकने पर उसे लूनता भी है । इसी प्रकार जो जैसा कर्म करता है उसको वह स्वयं ही भोगता है । देखो कि गड्ढा खोदने वाला स्वयं ही नीचे को जाया करता है ।

इत्यतो मया सम्पादितं विषान्नमधुना मयापि भोक्तव्यमेव किमनेनानिः -सारेण कलङ्कमलीमसेन जीवितव्येनेति ।

अर्थ - उपर्युक्त कारिका कहकर गुणश्री ने कहा कि इसलिए जिस विषान्न को मैंने पकाकर तैयार किया था वह मुझे भी खाना ही चाहिए, अब मैं भी इस कलङ्कमय जीवन में अधिक जी कर क्या करूँगी ।

दर्शक :- अहो किमिदमकारि गुणपालेन किलात्मविघातकरं यत्र पश्यामि सतामतीवानादरं पुनरबलाबालगोपालादीनामपि घृणाकरं कार्यमेतत्।

अर्थ - यह सब हाल जानकर वहाँ देखने वाले किसी एक आदमी ने आश्चर्य में पड़ कर कहा कि देखो गुणपाल सेठ ने अपने आपके ही नाश का कारण कैसा बुरा कार्य किया । जो भले कहलाने वाले मनुष्यों के लिए तो बुरी बात है ही, किन्तु सर्व साधारण स्त्री बालक और गुवाले आदि भी जिसे लज्जा की बात मानते हैं ।

गेन्दुकी - किमेतदेव किन्तु सापि महाबलमहाशयहनिः किलैतस्यैव दुष्परिणामफलमिति निश्चीयत इदानीमहो तदानीमपि प्रेषितो मृत्यवेऽसौ सोमदत्तो गुणरत्नखानिस्तदाप्यायुर्बलेन सौजन्येन वा मार्गमध्य एव मिलितोऽस्माकं स्नेहसन्निधानी स सज्जनो विनयसम्विधानी ।

अर्थ - यह बात सुनकर के फिर उन गेंद खेलने वालों में से भी कोई एक वहाँ खड़ा था वह बोला कि यही नहीं, बल्कि उस महाशय महाबल की मृत्यु भी इसी दुष्ट के दुष्कृत्य द्वारा हुई थी ऐसा भी जंचता है क्योंकि उस समय भी इसने, अनेक गुण-रूप रत्नों की खानि इस सोमदत्त को ही मरने के लिए भेजा था। उस समय भी इसकी आयुर्बल से समझो, चाहे सज्जनता से समझो, कैसे भी समझो रास्ते में ही हम लोगों के प्रेम का भंडार और विनय का ध्यान रखने वाला वह सज्जन महाबल मिल गया था - जो कि इसे वहीं ठहराकर आप इसके बदले मन्दिर गया और मारा गया।

दर्शक :- धिगेतादृक् कुलस्य मूलोच्छेदकरं कर्म, यच्छ्रवणे नैव भिद्यते मर्म, न नृशंसानामप्यस्मिन्नर्म ।

अर्थ - दर्शक बोला कि धिक्कार हो इस प्रकार के कुल के मूल को उखाड़ कर फैंकने वाले बुरे कर्म को, जिसके कि सुनने से ही मर्म-भेद होता है और तो क्या ऐसा काम तो निर्दय से निर्दय आदमी भी नहीं कर सकता ।

पर :- तथापीष्यतेऽसौ तु तस्य जामाताऽमुष्मै कथमीदृशी विचारधारा समाख्याता यत: सम्भवेदङ्गजानिस्साताऽस्त्य स्माकं चेतस्येकेयमवशङ्का समायाता।

अर्थ - इस पर किसी दूसरे ने कहा कि - ठीक है किन्तु यह सोमदत्त तो उस भले आदमी का दामाद है, इसके लिये भी उसके विचार ऐसे किस तरह से हो सकते हैं, क्योंकि इसे मारने पर उसी की तो लड़की बुरी हालत में हो जाती । अत: यह बात कैसे मानी जा सकती है बस यही शंका मेरे मन में उठ रही है।

अन्य :- संसारिजनचित्तपरिणतिविषये काऽसावाश्चर्यकथा सर्वैरेव क्रियते यथास्वार्थपूर्तिस्तथा, पुरापि प्रवर्तितमनेकैरीदृशेनैव पथा, श्रूयते किलोग्रसेनमहा-राजसदृशैरपि त्रिपथगायां स्वपुत्रसम्मोचनमाचरितं वृथा ।

अर्थ - किसी और ने कहा भाई, इस बात को छोड़ो - संसारी लोगों की चित्त-परिणति के बारे में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि सभी संसारी लोग अपने-अपने स्वार्थ की बात किया करते हैं, जब उनकी स्वार्थ-पूर्ति में बाधा आती है तब कुछ भी विचार नहीं किया करते, उनके लिये कोई प्यारा नहीं हैं, केवल स्वार्थ प्यारा होता है । पुराने समय में भी बहुतों ने ऐसा ही किया है जैसा कि सेठ गुणपाल ने किया । सुनते हैं कि महाराज उग्रसेन सरीखों ने भी व्यर्थ के स्वार्थ में पड़कर अपने लड़के कंस को गंगा में बहा दिया था ।

यतः खलु - **भार्यायामनुरूपताऽऽपि न यदि त्यक्त्वापरा प्रेक्ष्यते,**
भर्ताऽपि स्थविरत्वभाग् नहि दृशा भूमौ युवत्येक्ष्यते ।
माता पुत्रमतीत्य याति च पथा येनात्मपुष्टिर्वत,
सर्वस्यापि जनस्य वै स्थितिरियं प्रत्येत्यहो स्वार्थतः ॥१०॥

अर्थ - क्योंकि देखो जब स्त्री अपने अनुकूल नहीं होती तो उसका स्वामी उसे छोड़कर दूसरी से प्यार करने लग जाता है । स्त्री भी जब कि पति बुड्ढा हो जाता है तो उस बिचारे की ओर दृष्टि तक नहीं डालती। माता भी लड़के को छोड़कर उसी मार्ग का अनुसरण करती है जिससे कि उसकी इच्छा पूरी हो । बात ऐसी है कि हर एक संसारी जीव का यही हाल है कि वह अपने मतलब को लेकर ही प्रेम किया करता है।

वसन्तसेना - अयन्तु श्रीमान् सोमदत्तो गुणपालेन जामातापि पुनर्न स्वरसतः कृतः किन्तु भाग्यबलादेव जातः । विषस्य स्थाने विषासमर्पिताऽभूदित्यहं सुस्पष्टमनुभवामि ।

अर्थ - इतने में ही बसन्तसेना वेश्या (जिसने कि उस बगीचे में सोमदत्त के गले में से पत्र खोलकर पढ़ा था । बोली कि गुणपाल सेठ ने इन सोमदत्तजी को जमाई भी अपनी इच्छा से थोड़े ही बनाया था। ये तो भाग्य बल से ही सेठ के जमाई बने हैं क्योंकि विष देने के स्थान में विषा दे दी गई है, इस बात को मैं अच्छी तरह जानती हूं।

इत्तर :- कथमप्यस्तु समस्त्येव तु कस्मैचिदप्यनिष्टचिन्तनमनुचितं किं पुनरात्मीयाय । तदेव हि दौर्जन्यं यदन्येषां पथप्रस्थायिनामपि किलापकरणम्।

अर्थ - यह सुनकर कोई दूसरा बोला कि कैसे भी हो, वह जमाई तो हो ही गया था किसी के भी लिए बुरा विचार करना जब समझदार का काम नहीं हैं तो फिर अपने सम्बन्धी के लिए ऐसा करना तो बहुत ही बुरी बात है । इसी का नाम तो दुर्जनता है कि अपने रास्ते से चल रहे हुए भी अन्य लोगों का चल कर बिगाड़ किया जावे ।

व्यालवत्कालरूपत्वमनुबध्नाति दुर्जनः ।
स्वस्थं कमप्युदीक्ष्यास्याशूदरे शूलसम्भवः ॥११॥

अर्थ - बात तो यथार्थ में ऐसी है कि दुर्जन मनुष्य का तो जन्म ही सांप की तरह दूसरे लोगों को कष्ट देने के लिए ही होता है, किसी को भी आराम से बैठे देखकर उसका पेट दुखने लग जाया करता है।

अन्य :- अहो किलोचितानुचितविकलेनानेन

दुर्लभं नरजन्मापि नीतं विषयसेवया ।
चिन्तारत्नं समुत्क्षिप्तं काकोड्डायनहेतवे ॥१२॥

अर्थ - इतने ही में कोई और बोला - देखो करने और न करने योग्य के विचार से रहित होते हुए इस भले आदमी ने तो अपना यह अत्यन्त कठिनाई से मिला मनुष्य जन्म ही व्यर्थ खो दिया। खाने पीने सोने एवं दूसरों का बिगाड़ करने में बिता दिया । चिन्तामणि रत्न को पाकर भी कौए को उड़ाने के लिए उसे फैंक दिया ।

अपर :- श्रृणुत महानुभावा :-

सूक्तानुशीलनेनात्र कालो याति विपश्चिताम् ।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१३॥

अर्थ - फिर कोई दूसरा बोला - सज्जनों सुनो, दुनियां में दो तरह के आदमी होते हैं एक विचारशील और दूसरे निर्विचार । विचारशील हर समय नीति का विचार किया करते हैं, परन्तु दूसरे लोग तो बुरी आदतों में फंस कर एवं सोने में या दूसरे के साथ लड़ाई दंगा करने में ही अपना जीवन बिताया करते हैं ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः सु सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
पूर्तिं याति दयोदये विरचिते चम्पूप्रबन्धेऽमुना,
संख्यातो गुणपालसंस्थितिकथः षष्ठोऽपि लम्बोऽधुना ॥६॥

अर्थ - इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस दयोद्यचम्पू में गुणपाल सेठ का मरण-वर्णन करने वाला छठा लम्ब समाप्त हुआ ।

❖ ❖ ❖

卐 सप्तमो लम्बः 卐

राजा - **राजश्रेष्ठी गुणपालः कुतो नायाति साम्प्रतम् ।**
अस्माकं गुण इत्येवं शंका शंकूयते हृदि ॥१॥

अर्थ - महाराज वृषभदत्त अपने प्रधान से बोले-हे मन्त्रीजी । मैं देखता हूँ कि आज कई दिन से राश्रेष्ठी गुणपाल नहीं आ रहे हैं । यह शंका हमारे मन में कांटे की तरह चुभ रही है कि क्या बात है, क्यों नहीं आते हैं ?

मन्त्री-भो महाराज ? राजश्रेष्ठी गुणपालस्तस्य च हृदयावलम्बनभूता गुणश्रीरपि परलोकयात्रां चक्रतुः ।

अर्थ - हे महाराज ! सेठ गुणपालजी और उनके हृदय की आधार भूत सेठानी गुणश्री दोनों ही परलोक चले गये हैं ।

राजा-महाशय ! कथमिति भण्यते भवता सहसैवेदम् ।

अर्थ - राजा बोले - महाशयजी ! एकाएक आप ऐसा क्या कहते हैं ?

मन्त्री-महाराज ! सुनिश्चितमेवेदमितिं जानन्तु भवन्त: । विषान्नभोजनेनेदृशी दशा सञ्जाता तयोरिति ।

अर्थ - मंत्री बोला - महाराज ! मैं जो कह रहा हूँ आप बिलकुल सही समझें । विषयुक्त अन्न खा जाने से उन दोनों की यह दशा हुई है ।

राजा-विषान्नमपि कुत: सञ्जातमिति ज्ञातुमर्हति नश्चेतो । वृत्ति: ।

अर्थ - राजा बोले - विषान्न भी उनके लिये कहाँ से आया यह भी तो मेरा मन जानना चाहता है ।

मन्त्री-सोमदत्तनामजामातुर्मारणाय यदन्नं ताभ्यां सम्पादितं तदेव प्रमादात्स्वयमास्वादिमिति ध्येयम् ।

अर्थ - मन्त्री बोला - बोत ऐसी हुई कि उन्होंने अपने जमाई सोमदत्त को मारने के लिये विष-युक्त भोजन तैयार किया था जिसे गलती से उन्होंने स्वयं ही खा लिया ।

राजा - एवं चदस्ति कोऽपि महापुरुष: सोमदत्तोऽत आहूयतां पश्यामि तम् ।

अर्थ - राजा बोले यदि ऐसा है तो फिर सोमदत्त कोई महापुरुष है इसलिए उसे मेरे पास बुलाओ, मैं भी उसे देखूंगा ।

दूत:- यामि समानयामि तं महानुभावमिति राजाज्ञामुपादाय गत्वा सोमदत्तं प्रति सविनयं जगाद - भो महाशय, मत्प्रार्थनामपि श्रवसोरतिथिभावमानय-

अनल्पतरवारीद्धो वाहिनीशः प्रतीक्षते ।
विशदांशुकमाख्यातं श्रीमन्तं सकलाधरम् ॥२॥

अर्थ - हाँ महाराज, मैं जाता हूँ और उस महापुरुष को लाता हूं, इस प्रकार राजा से आज्ञा लेकर दूत सोमदत्त के पास गया और बोला कि- हे श्रीमान्‌जी आप अच्छी वेषभूषा वाले और चतुर मालूम होते हैं इसलिये जिनकी तलवार बड़ी शक्तिशाली है ऐसे हमारे महाराज आपको याद कर रहे हैं । इसी का दूसरा अर्थ यों भी होता है कि - आप निर्मल किरणों वाले होने से अच्छी कान्ति वाले चन्द्रमा हैं इसलिये बहुत ही बढ़े हुए जल का धारक समुद्र आपकी प्रतीक्षा कर रहा है ।

सोमदत्त - **चातकमाह्वयेन्मेघो महत्त्वमिति वार्मुचः ।**
महापुण्योदयस्तावच्चातकस्याप्यसौ पुनः ॥३॥

अर्थ - सोमदत्त बोला कि - स्वयं मेघ ही पपीहे को याद करके बुलावे, यह उस मेघ का बड़प्पन है और इसमें पपीहे के भी परम पुण्य का उदय समझना चाहिये ।

अपिच - **भवतामनुयोगेन तृणवत्सम्मतोऽप्यहम् ।**
नीराणामिव नाथेन सङ्गमिष्यामि भोऽधुना ॥४॥

अर्थ - एक बात और भी बड़ी खुशी की है कि मैं राजा साहब से मिलना ही चाहता था, किन्तु मैं तो एक तिनके के समान छोटा आदमी था, उनसे कैसे मिल सकता था । किन्तु अब आपका सहारा पाकर मेरा उनसे मिलना हो जावेगा, जैसे कि तिनके को बहते हुए पानी का सहारा मिल जाय तो वह भी समुद्र तक पहुँच जाता है ।

दूत - **कृपेयं भवतामस्ति नृपे दर्शनमीयुषि ।**
श्रीमता गीर्मता मे याऽत्र पेया पारिणामिकी ॥५॥

अर्थ - दूत ने कहा - यह आपकी बड़ी कृपा है । राजा साहब आपसे मिलना चाहते हैं और आपने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, यह बड़ी खुशी की बात है, यह चिरकाल के रोगी को पेय (पीने योग्य औषधि) मिल जाने के समान हितकारी है ।

सोमदत्त :- राजस्थानं गत्वा राजान प्रति विजयतां महाराजः ।

दिन एनमिनः समीक्षते निशि राजा वलयं पुन क्षितेः ।
जनतां सततं प्रपालयँस्तु महाराज इतो भवान् स्वयम् ॥६॥

अर्थ - राज-दरबार में जाकर राजा के सम्मुख सोमदत्त बोला- महाराज की जय हो । हे महाराज इस भूमण्डल की प्रतिपालना करने वाले आपके सिवाय दो और हैं - एक तो सूर्य, दूसरा चन्द्रमा । सूर्य दिन में रक्षा करता है इसलिए उसे 'इन' कहा जाता है और चन्द्रमा रात्रि में प्रतिपालना करता है अतः उसे राजा कहते हैं । किन्तु आप तो प्रजा की रक्षा के लिए रात दिन हर समय कटिबद्ध हैं इस कारण आपको महाराज कहना बहुत उचित है ।

राजा - **पुरुषोत्तमस्य भवतो गोपालकबालकस्य भूवलये ।**
स्वागतमस्तु विषधराभिविजयनः स्वार्थपूर्तिमये ॥७॥

अर्थ - हे सोमदत्त, इस स्वार्थ-परायण धरातल पर आप विषधराभिविजयी अर्थात् विष के प्रसङ्ग को जीतने वाले, अथवा विषधर शेषनाग को भी जीतने वाले हैं और गोपाल (गोविन्द या नन्दगोप) के पुत्र हैं एवं आप पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण या भले आदमी) हैं, इसलिये हम आपका स्वागत करते हैं ।

इत्युक्त्वा सोमदत्तायासनं दातुं द्वास्थितं स ज्ञापयामास ।

अर्थ - ऐसा कहकर सोमदत्त को आसन देने के लिये राजा ने अपने द्वारपाल को संकेत किया ।
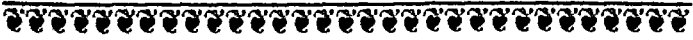
दौवारिकस्तु विष्टरवरं भूपसन्निधावेव दत्वा समुवाच-

तिष्ठन्तु तरला पादा भवतः प्रतिभावतः ।
मृदुनीव रवेः पद्मे पीठे वृत्ते कवेरिव ॥८॥

अर्थ - द्वारपाल ने सोमदत्त के लिये राजा के पास में ही सिंहासन ला करके रख दिया और बोला- हे महाशय, आप प्रतिभा-वाले विचक्षण बुद्धि वाले या प्रभावाले है, अतः आपके पाद (पैर) इस कोमल आसन पर विराजमान होवें, जैसे कि सूर्य की किरणें कमल पर, अथवा कवि के शब्द किसी भी छन्द पर जाकर अंकित होते हैं।

सोमदत्त - **अर्हामि नासने स्थातुं श्रीमतोभूभृतोऽग्रतः ।**
शोभते सुतरामेव पितुश्चरणयोः प्रजा ॥९॥

अर्थ - सोमदत्त बोला - महाराज के सामने मैं आसन पर कैसे बैठ सकता हूँ । पुत्र को तो पिता के चरणों में बैठना चाहिए। मैं तो महाराज की प्रजा हूँ, अतः भूमि पर बैठूंगा ।

मन्त्री - **बालो वा यदि वा वृद्धो युवाऽथ गृहमागतः ।**
माननीयोऽवनौ सद्भिः सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥१०॥

अर्थ - इस पर मन्त्री बोला - जो गृहस्थ के घर पर आता है वह अतिथि कहलाता है, वह चाहे बालक हो, बुड्ढा हो, या जवान किसी दशा में हो, उसका आदर करना सत्पुरूषों का कार्य होता है, क्योंकि अतिथि ही सब से बड़ा देव माना गया है । आप हमारे अतिथि हैं, अतः आपका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है ।

इति कथं न भवानादरणीयतामस्माकमर्हति, कथमत्रौचित्यस्य हतिः सम्भवति किलासावस्मादृशां कर्त्तव्यसंहतिः, यतो भवद्भिः सहाद्य महतो भाग्यात्सम्पद्यते सङ्गतिरिति ।

अर्थ - तो फिर आप हमारे द्वारा आदर के पात्र क्यों नहीं हैं । इसमें कौनसी असंगत बात है बल्कि यह तो कर्त्तव्य-पूर्ति है कि हम लोग आपका सत्कार करें । क्योंकि आज कोई बड़े भारी भाग्य से आप के साथ हमारा समागम हुआ है ।

राजा - कुशलक्षेमकथोच्यताम् ।

अर्थ - इस प्रकार आसन पर बैठ जाने के बाद सोमदत्त से राजा ने कहा - कहिये, कुशल-क्षेम तो है ।

सोमदत्तः- अन्यत्तु सर्वमपि श्रीमतां चरणप्रसादेन कुशलं, किन्तु श्वसुरः श्वश्रूश्च मत्परोक्षतामनुभवति सहसैवेत्येतावन्मात्रमेव मन्मनसि शङ्कूयते ।

अर्थ - सोमदत्त ने कहा - आपके चरणों के प्रसाद से और तो सब कुशल है, किन्तु श्वसुरजी और सासुजी दोनों ही अकस्मात् परलोक चले गये, इस बात का मन में दुःख है ।

राजा - **लाभालाभौ जनुर्मृत्युर्यशोऽपयश एव च ।**
स्वाधीनो न जनोऽमीषु भवतीह मनागपि ॥११॥

अर्थ - राजा बोला - हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश का होना तो मनुष्य के हाथ की बात नहीं है ये तो दैवाधीन हैं।

मंत्री - **मनोऽनुकूलमङ्गीह प्रकर्तुमभिवाञ्छति ।**
सम्पद्यते तदेवाऽऽशु यद्विधेर्मनसि स्थितिम् ॥१२॥

अर्थ - मन्त्री बोला - यह संसारी जीव प्रत्येक कार्य अपनी इच्छानुकूल करना चाहता है, किन्तु होता है वही जो कि दैव के मन में होता है उसके विरूद्ध कुछ नहीं हो सकता ।

राजा-भो महाभाग ? यदि भवतामस्माकमुपरि प्रीतिस्तदा स्वीकार्यैका प्रार्थनापीति ।

अर्थ - अवसर देख कर राजा बोला - हे महाशय ! सोमदत्तजी अगर आप हमारे पर प्रेम रखते हैं तो हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करें।

सोमदत्त :- समस्त्यसौ सेवकः समुपस्थितो यस्य खलु भवादृशां सेवैव जीवनरीतिः ।

अर्थ - सोमदत्त बोला - इसके लिए यह सेवक हर समय तय्यार है । आप सरीखों की सेवा करना ही इसके जीवन का आधार है ।

राजा-राजकुमारीपरिणयनेनानुग्राह्योऽस्मि भवतायतः किलेयमस्या जन्मसमयमुपस्थितनैमित्तिकनिवेदनेन भवत एव परिग्रह इति ।

अर्थ - राजा बोला - आप हमारी इस राजकुमारी का पाणिग्रहण करलें तो बड़ी कृपा हो । जब इसका जन्म हुआ था उस समय जो ज्योतिषी उपस्थित था उसके कहे अनुसार यह आपके ही ग्रहणयोग्य है आप ही इसके स्वामी हो सकते हैं ।

सोमदत्तः धरणीधरचरणारविन्दयुगलं प्रणनाम ।

अर्थ - यह सुनकर सोमदत्त ने और कुछ नहीं कहा, किन्तु राजा के चरण कमलों में झुककर उसने नमस्कार किया ।

राजा कुमार्या समं राज्यार्धमपि दत्वा सबहुमानमनुजग्राह ।

अर्थ - राजा ने सोमदत्त के साथ अपनी लड़की का विवाह कर और अपना आधा राज्य भी देकर उसे अपने समान बना लिया।

राजकुमारी असाधारणसौन्दर्यशालिनं तं दृष्ट्वा -

कामोऽस्त्यसौ किमुत मे हृदयं विवेश,
सम्मोहनाय किमिहागत एष शेषः ।
आखण्डलोऽयमथवा मृदुसन्निवेश-
श्चन्द्रो ह्यवातरदहं मम सम्मुदे सः ॥२३॥

अर्थ - राजकुमारी ने जब उस सोमदत्त को देखा और एक अनोखे ही रूप का धारक जब उसे पाया तो वह सोचने लगी कि क्या यह साक्षात् कामदेव ही तो नहीं है, जिसने अनायास ही मेरे हृदय में घुस कर स्थान पा लिया है । अथवा मुझ सरीखी को संमोहित करने के लिये यहाँ पर पाताल में से शेषनाग ही तो नहीं आ गया है । किंवा बहुत ही कोमल अवयवों वाला यह इन्द्र ही है क्या! यद्वा मुझे प्रमुदित करने के लिये आकाश में से चन्द्रमा ही आया है ।

इति सञ्जातसंकल्पा निजीयलोचनावलोकनसन्ततिविशालां सुललितकुसुममालां भद्रं दिशतु भगवानिति दुलालापाधिकालां मोचयामास सोमदत्तगलकन्दले ।

अर्थ - इस प्रकार अपने मन में विचार करने वाली राजकुमारी ने *भगवान् कल्याण करें, ऐसा मङ्गलोच्चारण जिसके साथ में है ऐसी अपने* लोचन, की परम्परा के समान लम्बी एक मनोहर फूलों की माला सोमदत्त के गले में पहना दी ।

सोमदत्तोऽपि तामविकलसकलावयवतया सद्गुणसम्पन्नजीवनदुकूलतया च समस्तनारीनिकरोत्तमाङ्गमण्डनरूपा मसाधारणरूपप्रशस्तिस्तूपामुदीक्ष्यविचारयति-

अर्थ - जिसके सभी अङ्गोपाङ्ग अच्छी तरह से बने हुए हैं, और जिसका जीवन रूप वस्त्र अच्छे से अच्छे गुणों (सरलता आदि या धागों) से गुंथा हुआ है, अत: जो संसार की सम्पूर्ण स्त्रियों के मस्तकों का मण्डन स्वरूप है और अपूर्व सौन्दर्य को लिये प्रशास्तिस्तूपका काम करने वाली है, ऐसी उस राजकुमारी को देखकर विचारने लगा-

किम्भोगिनीयमनुयाति दृशैव मोहं,
किं किन्नरी खलु ययाऽस्मि वशीकृतोऽहम् ।
किं वा रति: परिकरोति किलानुरागं,
श्रीरेव भूषयति या मम वामभागम् ॥२४॥

अर्थ - यह कौन क्या नागकन्या है, जो कि मुझे देखने मात्र से ही मूर्च्छित कर रही है अथवा किन्नरी है जिसने कि मुझे अच्छी तरह से अपने वश में कर लिया है, अथवा क्या यह रति है जो कि एकान्त रूप से अनुराग उत्पन्न कर रही है ? नहीं, यह तो वास्तव में लक्ष्मी प्रतीत होती है जो कि मेरे वामभाग को अलंकृत कर रही है ।

सञ्जीविनीव सा शक्तिर्विषा ज्योत्स्नेव मे विधोः ।
समाभाति जगन्मान्या किन्त्वियं तु प्रसन्नता ॥१५॥

अर्थ - विषा तो मेरे लिये सञ्जीविनी शक्ति सरीखी है जैसे कि चाँद की चाँदनी और यह राजकुमारी जगन्मान्य होकर मेरे लिये प्रसन्नता के समान होनी चाहिये ।

इत्येवं मत्वा रविप्रभाया इव कोकोपश्लोकितसुरूपाया राजदुहितुः करग्रहणं कृत्वा समुत्तरङ्गितान्तरङ्ग कासार इव सम्फुल्लाननतामाप ।

अर्थ - इस प्रकार विचार कर उस सोमदत्त ने कोक (चकवा पक्षी या मनुष्यों का लक्षण-शास्त्र बनाने वाले कोक नामक पंडित) के द्वारा प्रशंसा योग्य है उत्तम रूप जिसका ऐसी सूर्य की प्रभा के समान उस राजकुमारी का पाणिग्रहण किया और तालाब के समान समुत्तरङ्गितान्तरङ्ग (हर्ष-सहित नाना विचार-युक्त मन वाला, या उछलती हुई लहरों से युक्त जल वाला) होता हुआ, सम्फुल्लाननता को (खिले हुये फूल सरीखे मुख को या खिला हुआ फूल ही है मुख जिसका ऐसी अवस्था को) प्राप्त हुआ, अर्थात् बहुत प्रसन्न हुआ ।

राजा-प्रतिक्षणं प्रतीक्षुणं कृत्वोपलालितेयं बालऽद्य भवते समर्पिता नाम गुणमाला यस्यै पातिता किलोनेकैर्युवभिमुर्हुमुर्हुर्लाला किन्तु न तेभ्यो विधातुर्जाघटीति शासनशालाऽथ च भवितुमर्हाऽस्या उपरि भवतोऽपि दृष्टिः सुरसाला ।

अर्थ - राजा बोला देखो सोमदत्तजी, मैंने प्रतिक्षण पूरी सम्भाल के साथ जिसका पालन पोषण किया है वह पुत्री आज आपके लिये अर्पण

की है जिसका कि नाम गुणमाला है, और वह है भी गुणों की माला ही, जिसको कि देख करके अनेक राजकुमारों ने लार टपकाई है इसे प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठा प्रगट की है । किन्तु उनके लिये विधाता की आज्ञा नहीं हुई । अब आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस पर स्नेह की दृष्टि बनाये रखें ।

विषा-ससम्भ्रममुपेत्य तावतैव पितुश्चरणयोः प्रणाममित्युक्त्वा नरपतेरग्रतः समुपस्थिता जाता ।

अर्थ - इतने में ही हर्ष के साथ आकर पिताजी के चरणों में प्रणाम हो ऐसा कह कर विषा भी राजा के आगे आ खड़ी हुई।

राजा विषा समुदीक्ष्य जगाद- अयि पुत्रि त्वया या भर्तुः सेवासम्पाद्यते तस्यां साहाय्यमापादयितुमस्तु किलैषाऽनुजाद्य ते तावदिति मया प्रतिपाद्यते।

अर्थ - विषा को देखकर राजा बोला- हे पुत्री, आज मैं तुम्हारी यह छोटी बहिन तुम्हें सौपता हूँ ताकि जो कुछ तू अपने स्वामी की सेवा किया करती है उसमें यह भी तेरी सहायता करती रहे।

विषा- भो तात, भवतामतीव कृपाऽसावस्ति यतोऽहमधुनैकाकिनी सैवानया किलैकादशीव पुण्यसम्पादिनी भविष्यामि द्वितीयेव च भद्राचरणपरायणा।

अर्थ - विषा बोली हे पिताजी, आपने बड़ी भारी कृपा की, आज तक मैं अकेली थी, अब इसे पाकर एक और एक ग्यारह इस कहावत के अनुसार एकादशी के समान पुण्य सम्पादन करने वाली बन जाऊँगी, अर्थात् मुझे इससे बड़ी सहायता मिलेगी । एवं द्वितीया तिथि के समान भद्रा भली कहलाने योग्य बन जाऊंगी ।

राजा - राजकुमारीं प्रति जगाद-हे वत्सेऽसौ तवाग्रजा नाम विषा, यथा किलेयमुपदिशेद् गन्तव्यं त्वया तयैव दिशा, तथा भविष्यति सतां मान्या सन्ध्यानुचरीव निशा ।

अर्थ - राजा ने फिर राजकुमारी से कहा-देख बेटी, यह विषा तेरी बड़ी बहिन है, अत: जैसा यह कहे उसी रास्ते से तुझे चलना चाहिए, तभी तू सत्पुरुषों के द्वारा प्रशंसा योग्य होगी, जैसे कि सन्ध्या के पीछे-पीछे चलने वाली रात्रि नक्षत्रों से शोभा को प्राप्त होती है।

राजकुमारी - हे तातेयं मातेव मङ्गलकारिणीत्यतोऽहं भवाम्येत-दाज्ञानुसारिणी मत्सीव वारिधाराधिकारिणी ।

अर्थ - राजकुमारी बोली हे पिताजी, ठीक है यह मेरी माता के समान भला करने वाली है, ऐसा समझकर मैं इसकी आज्ञा के अनुसार चलूँगी जैसे कि मछली जल-धारा के अनुकूल होकर चला करती है ।

राजा - विषामुद्दिश्य जगाद - हे तनयेऽसौ बाला प्रत्यासन्नस-माप्तकौमारकालऽत एव वल्लरीव मृदुलपल्लवापि सुकोमलहृदयालवाला, त्वन्तु समुदितशाखिशाखेव समाश्रितविचाला किलेत्यतोऽमुष्यै भवितुमर्हत्याश्रयदानशाला यथानुमित्यै साधनमाला ।

अर्थ - राजा ने फिर विषा से कहा - हे बेटी यह गुणमाला अभी बच्ची है, अभी तक भी इसका लड़कपन गया नहीं है, इसलिए लता के समान यह सुकोमल पल्लव रखती है अर्थात् थोड़ा बोलती है, क्योंकि इसकी हृदयरूपी क्यारी अभी पक्की नहीं हो पाई है, और बेटी तू बड़ी है एक भले वृक्ष की शाखा के समान विचार (बुद्धि अथवा पक्षियों का संचार) रखने वाली है इसलिए इसे सम्भालते रहना, समझा बुझा कर चतुर कर लेना । जैसे अनुमिति को हेतु का सहारा होता है वैसे इसे तो अब तेरा ही सहारा रहेगा बेटी ?

विषा-हे पूज्यपाद ! समस्तीयं ममानुजाप्राया या कुसुम: कलिकेव तरुतरलशाखाया मृदुलतमकलपल्लवै: समुपलालनयोग्या सतो भायादिति स्थितिर्मदीयहृदि कल्पनाया: ।

अर्थ - इस पर विषा ने कहा - हे पूज्यपाद, यह तो मेरे पीछे आने वाली ठीक मेरी छोटी बहिन है, इसलिए बड़ी प्यारी है, जैसे वृक्ष

की शाखा पर फूल की कली आती है उसके समान सुहावनी है, कोमल से कोमल कोंपल सरीखे शब्दों द्वारा पुचकारने योग्य है ऐसा मैं अपने मन में समझ रही हूँ ।

राजा प्रसन्न: सन् वृत्तितृप्तिभ्यां युतं धर्ममिव ताभ्यां विषा-राजकुमारीभ्यामन्वितं सोमदत्तं भुवो भूषणमनुभवन् निजार्द्धराज्यदानेन पुपोष।

अर्थ - जिस प्रकार आजीविका और सुचारूता से युक्त धर्मसेवन, पृथ्वी की शोभा को बढ़ाने वाला होता है, उसी प्रकार विषा और राजकुमारी इन दोनों से युक्त सोमदत्त को भी मानकर राजा ने अपना आधा राज्य देकर उसे सम्पन्न बना लिया ।

कविः कथयति -

सोमाभिधः काय इवायमेक-
स्तयोर्द्वयोस्तस्य भुजाविवेकः ।
दृशोरिवास्यस्य नगस्य शाखा-
ख्ययोरिवाब्धेः सरितोर्विशाखा (धीः) ॥१६॥

अर्थ - सोमदत्त एक शरीर के समान है और विषा तथा राजकुमारी ये दोनों उसकी भुजाएँ हैं, ऐसा समझना चाहिए । अथवा एक मुख पर दो आँखें, एक वृक्ष की दो शाखाएं, एवं एक समुद्र को प्राप्त होने वाली गंगा और सिन्धु ये दो नदियाँ होती हैं वैसे ही सोमदत्त के लिए विषा और राजकुमारी है ऐसा मेरी बुद्धि कहती है ।

ज्ञप्ति-वृत्तियुतस्येव सन्मतस्य परिस्थितिः ।
विषा-राजकुमारीभ्यां वृतस्य समभूदिति ॥१७॥

अर्थ - यथार्थ जानकारी और तदनुकूल आचरण से युक्त सच्चे मत का जिस प्रकार आदर होता है उसी प्रकार विषा राजकुमारी से युक्त उस सोमदत्त का भी बहुत आदर सम्मान होने लगा ।

विषा-अथैकदा भोजनवेलायां सम्पन्नमन्नमति कृत्वा तत्र राजकुमारी मुपस्थाप्य स्वयं स्वपतिप्रतीक्षां कर्तुमुपयुक्ताऽभूत्। यावच्च स समाजगाम राजकार्यं कृत्वा तावदेव सुकेतुनामामुनिश्चर्यापर्यापपरिणतो दृष्टिपथमगात्।

अर्थ - एक दिन विषा ने भोजन बनाकर तैयार किया और वहाँ राजकुमारी को बैठाकर आप पति को देखने के लिए बाहर दरवाजे पर आकर खड़ी हुई । इधर राजकार्य को पूरा कर के सोमदत्त वहाँ पहुँचा तो क्या देखता है कि एक मुनिराज चर्या करते हुए आ रहे हैं ।

योऽसावङ्गाद्विरक्तोऽप्यनङ्गाद्विरक्तस्तपोधनोऽपि शान्तमूर्तिराचारस्य पञ्चतामनुसन्दधानोऽपि सदाचारपरायणो नैराश्यमधिकुर्वाणोऽप्याशावसनोऽक्षनिग्रहकरोऽपि समक्षतामागत: सत्य संप्रत्योयऽप्यसत्यसम्प्रत्यय: समदत्तवृतिरप्यदत्तमनङ्गीकुर्वाणोऽसङ्गगोचरोऽपि प्रसङ्गप्राप्तगोचरणवृत्तिरनृशंसगुणसहितोऽपि न्द्‌णां मध्ये प्रशसास्थानीय इति ।

अर्थ - वह मुनिराज अङ्ग-विरक्त होकर भी अनङ्ग-विरक्त हैं, तपोधन होकर भी शान्त मूर्ति हैं, आचार की पञ्चता को रखने वाले होकर (आचार के नाश वाले होकर) भी सदाचार-परायण हैं, निराशवान् होकर भी आशा में रहने वाले हैं, इन्द्रिय-विजयी होकर भी हृष्ट-पुष्ट इन्द्रियों वाले हैं, सत्य-सम्प्रत्यय होकर भी असत्य-सम्प्रत्यय हैं, सम्यक् प्रकार अदत्त में प्रवृत्ति करने वाले होकर भी अदत्त को नहीं लेने वाले हैं, सङ्ग (परिग्रह) रहित होकर भी प्रचुर परिग्रह रखने वाले हैं, एवं मनुष्यों के द्वारा प्रशंसा के अयोग्य गुणों वाले होकर भी लोगों में प्रशंसा के स्थान हैं । इस प्रकार यह साधु तो परस्पर विरूद्ध अर्थधारी से दीखते हैं । इसका परिहार इस प्रकार है - वह मुनि अङ्ग-से शरीर से-विरक्त हैं शरीर से जिन्हें मोह नहीं है, और अनङ्ग अर्थात् काम-चेष्टा से भी विरक्त हैं । तपोधन तप को ही अपना धन समझते हों, किन्तु शान्त मूर्ति हैं, उनके क्रोध बिलकुल नहीं है । दर्शनाचारादि पाँच प्रकार के आचार को पालने वाले हैं इसलिये सदाचारी हैं । अथवा सदा विचरने वाले हैं किसी भी एक

स्थान को अपना बनाकर नहीं रहते हैं । सभी प्रकार की आशाओं से रहित हैं और दिशा ही जिनके वस्त्र हैं (वस्त्र रहित हैं,) सबको स्पष्ट रूप से इन्द्रिय-विजयी प्रतीत होते हैं । सत्य पर जिनका दृढ़ विश्वास है, इसलिये वह व्यभिचारिणी स्त्रियों का स्मरण भी नहीं करते हैं, समता भाव में प्रवृत्ति करने वाले हैं अतः किसी की भी भी बिना दी हुई कोई भी वस्तु नहीं लेते हैं, सभी प्रकार के संग (परिग्रह) से रहित हैं किन्तु जो प्रसंग पाकर के गोचरी करने के लिये आ रहे हैं, हिंसा से सर्वथा दूर हैं इसलिए लोगों के द्वारा प्रशंसा करने के योग्य हैं ।

सोमदत्तस्तं दृष्ट्वा जगाद- भो प्रिये, पश्य तावदेकः परमहंसः समायाति।

अर्थ - उन मुनिराज को देखकर सोमदत्त बोला - हे प्यारी, देखो तो सही कि एक परमहंस साधु आ रहे हैं ।

विषा - भो स्वामिन् प्रतिगृह्यतां, गृहस्थानां परमभाग्योदयादेव च साधुसमागमो भवति।

अर्थ - यह सुनकर विषा बोली - हे स्वामिन् उनका प्रतिग्रह (स्वागत) करो । आज हमारा बड़ा भाग्य है जो इस समय साधु हमारे घर की ओर आ रहे हैं गृहस्थ के जब कोई अपूर्व पुण्य का उदय होता है, तभी साधुओं का समागम होता है ।

यत्दसदनं गृहस्थस्य साधोः सङ्गमनेन तत् ।
पुनीततामुपायाति वसन्तेन यथा वनम् ॥१८॥

अर्थ - गृहस्थ का घर साधुओं के समागम से ही - उनके पदार्पण से ही-पवित्र बनता है, जैसे कि बसन्त के आगमन से वन।

सोमदत्तस्तथैव विषापि - भो साधो नमोऽस्तु नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, समागम्यतामिति ।

अर्थ - ऐसा विचारकर सोमदत्त और विषा दोनों ने कहा, हे स्वामिन् नमोऽस्तु, आइये आप अपने चरणों से हमारे घर को पवित्र कीजिये ऐसा तीन बार कहा ।

साधु - समुद्र इव गम्भीरः सुमेरुरिव सून्नतः ।
प्राकार इव सद्-वृत्तः समभात्समुपस्थितः ॥१९॥
ज्योत्स्ना-चन्द्रमसोरग्रे प्रभा-भास्करयोरुत ।
परिखा-पुरयोरेवं सविषासोमदत्तयोः ॥२०॥

अर्थ - समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान उन्नत और प्राकार-परकोटे के समान सद्-वृत्त (अच्छे चरितवाला या गोलाकार) वे साधु उन विषा और सोमदत्त के आगे आकर खड़े हो गये तो कैसे मालूम पड़ने लगे मानो चाँदनी-सहित चाँद के आगे समुद्र ही आ गया हो, अथवा प्रभा और सूर्य के आगे सुमेरु ही हो, किं वा खाई और नगर इन दोनों के बीच में परकोटा हो ।

जम्पती च मुनिमुच्चासने स्थापयित्वा त्रिःपरीत्य पुनः पुनः प्रणम्य पदयोः प्रक्षालनमर्चनं च कृत्वा निधानलाभेनेव प्रसन्नमनसौ द्वितीयवर्षेणेव गद्गदवचसौ त्रिदोषसाम्येनेव सरलतरशरीरौ भूत्वा संशोधितं संसाधितं च सुप्रासुकमन्नमर्पयामासतुः ।

अर्थ - फिर उन दोनों स्त्री पुरुषों ने मुनि महाराज को उच्चासन दिया, तीन प्रदक्षिणा की बार-बार नमस्कार किया, उनके चरणों का प्रक्षालन किया, पूजा की और मानों कोई बड़ी भारी निधि मिल गई हो इस प्रकार से मन में वे बहुत ही हर्षित हुए, दो वर्ष के बालक के समान गद्गद शब्द बोलने लगे एवं अपने शरीर को वात पित्त और कफ की समानता में जिस प्रकार वह सरल हो जाता है, उस प्रकार सरल बनाकर पहले ही से बनाकर तैयार किये हुए और सोधे हुये निर्दोष, प्रासुक सिद्धान्न को मुनिराज के लिये अर्पण किया ।

यतिः- जलाशय इव निर्मलान्तःकरणः कमलेनेव कोमलेन निजाञ्जलिपुटेन रविरश्मि-प्रभाताभ्यामिव ताभ्यामर्पितमीषदुष्णरूपमन्नं जग्राह।

अर्थ - सरोवर के समान निर्मल है अन्तरङ्ग जिनका ऐसे मुनिराज ने भी कमल के समान कोमल अपने अञ्जलिपुट में, सूर्य की किरण

और प्रातःकाल के समान उन दोनों स्त्री-पुरुषों के द्वारा अर्पण किये हुए, अप्प उष्णता वाले अन्न को ग्रहण किया ।

द्वि-त्राणि कवलानीह गर्तपूरणरूपतः ।
उररीकृतानि यावद् ध्यानाध्ययनसंयुजा ॥२१॥

अर्थ - ध्यान और स्वाध्याय में तत्पर रहने वाले उन मुनिराज ने जैसे कि कोई गढ्डे को भरता है वैसे ही बिना स्वाद लिए केवल दो तीन ग्रास ही लिए कि इतने ही में -

देवाः-पतत्रिण इव नभोगामिनस्तावज्जय-जयेत्युच्चैःकलकलं चक्रुं।

अर्थ - आकाशाङ्गण में आकर प्राप्त होने वाले पक्षियों के समान देव लोगों ने जय हो, जय हो, इस प्रकार का उच्च स्वर से जयनाद किया ।

अहो दानमहो दाताऽहो पात्रस्य परिस्थितिः ।
अहो विधानमप्येतद्विश्वकल्याणहेतवे ॥२२॥

अर्थ - अहो इस दान की, इस दातार की और इस दान के लेने वाले पात्र की क्या प्रशंसा की जाय, ऐसा समागम मिलना सरल बात नहीं है, ऐसे दान के द्वारा संसार भर का कल्याण होता है, इस प्रकार से देवों ने कहा ।

राजकुमारी-अहो किमधुना दत्तं रूक्षं किञ्चिन्मात्रमन्नं तथापि गीर्वाणैरेवं श्लाध्यते मुहुरिति किलाश्चर्यचकितं चेतोऽस्माकमरित ।

अर्थ - यह देखकर राजकुमारी ने विचार किया-देखो इन्होंने क्या दिया है, रूखा-सुखा एक मुट्ठी अन्न दिया है, किन्तु फिर भी देवता लोग इसकी किस प्रकार प्रशंसा कर रहे हैं इसमें प्रशंसा योग्य कौनसी बात है यह मेरे मन में भारी आश्चर्य हो रहा है ।

यद्वा न कोऽप्याचश्यों यतः-

दानं कृतं स्वार्थसमर्थनाय यद्वा स्वनाम्नो भुवि बर्द्धनाय।
न दत्तमारादनपेक्ष्य किञ्चित्कृतः श्रयेत्सात्त्विकसङ्गतिं चित् ॥२३॥

अर्थ - फिर उसने सोचा-ठीक है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि-यद्यपि आज तक हम लोगों ने अनेक बड़े-बड़े दान दिये, किन्तु या तो वे किसी न किसी स्वार्थ को लेकर दिये, अथवा संसार में अपनी कीर्ति फैलाने के लिये दिये। सात्त्विक विचार को लेकर किसी प्रकार की अपेक्षा के बिना एक बार भी ऐसा दान नहीं दिया। बस, यही इसमें बड़ाई है।

ठकाय दत्तं ह्यतिलोभतो गतं सकात्समायाति विवृद्धय तद्धितम्।
स्थले समुप्तं शतशः फलत्यरं तथैव पात्राय समर्पितं वरम् ॥२४॥

अर्थ - जैसे कोई गृहस्थ अधिक ब्याज वृद्धि के लोभ में फंसकर किसी ठग या दिवालिया को अपना धन दे देता है तो वह समूल ही नष्ट हो जाता है और यदि किसी साहूकार को देता है तो वह ब्याज के साथ वापिस आता है, वही धन यदि धान्य के रूप से खेत में बो दिया जाता है तो वह सैकड़ों गुणा होकर फलता है। इसी प्रकार पात्र के लिये अर्पण किया हुआ थोड़ा सा भी दान अपूर्व फल देता है।

यतिः स्यादुत्तमं पात्रं वानप्रस्थस्तु मध्यमम्।
जघन्यमन्य एताभ्यामपात्रं त्वतिगर्हितम् ॥२५॥

अर्थ - सबसे अच्छे उत्तम पात्र तो साधु होते हैं जो कि संसार की सब प्रकार की झंझटों से सर्वथा दूर रहते हैं और ध्यान-अध्ययन में ही लगे रहते हैं मध्यम पात्र वानप्रस्थ होते हैं जो कि दुनियादारी की बातों से बचकर परोपकार के कार्यों में तत्पर रहते हैं। इन दोनों के सिवाय सर्व साधारण लोग तीसरे दर्जे के पात्र होते हैं। किन्तु चोरी चुगलखोरी

आदि के द्वारा दुनियाँ को धोखा देकर एकान्त रूप से अपना पेट भरना ही जिनका धन्धा है ऐसे पापी लोग तो अपात्र हैं, उन्हें दान के पात्र ही नहीं समझना चाहिए ।

धन्येयं भगिनी धन्यो भर्ता याभ्यां प्रतर्पितः ।
ऋषिरेष यतोऽस्माकं पूततामेति सद्म च ॥२६॥

अर्थ - यह हमारी बहिन विषा और यह भर्ता दोनों ही बड़े पुण्याधिकारी महापुरुष हैं, जिन्होंने ऐसे ऋषि को दान दिया है, जिससे कि हमारा घर और हम लोग सभी पवित्र हुए हैं ।

अथ प्रसक्तिमवाप्य सोमो विषा राजकुमारी च त्रयोऽपि गायन्ति -

अर्थ - इसके बाद सोमदत्त विषा और राजकुमारी तीनों मिलकर प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार गाना गाने लगते हैं -

जय जय ऋषिराजापितु जय जय ऋषिराज ॥ स्थायी ॥ २७ ॥ १
भूराज्यादि समस्तमपि भवान् सहसा तत्याज ॥ १ ॥
पोत इवोत तारणाय सदा भवतो भवभाजः ॥ २ ॥
भोगविरक्तमञ्चति भवन्तं स नभोगसमाजः ॥ ३ ॥
त्रिभुवनजयिनोऽप्यगोचरस्त्वं भवसि स्मरराज ॥ ४ ॥

अर्थ - हे ऋषिराज, आप सदा जयवन्त रहें जिन्होंने कि सांसारिक राज्यपाट आदि सभी कुछ एक दम से छोड़ दिया है । हे महाराज, आप शरीरधारी लोगों को संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये जहाज के समान हैं । आप संसार के भोगों से बिलकुल विरक्त हैं, इसीलिये आपको देव लोग भी पूजते हैं, मनुष्य की तो बात ही क्या, हम लोग अधिक क्या कहें आपने तीन लोक को जीतने वाले कामदेव को भी जीत लिया फिर आपकी क्या प्रशंसा की जाय, जो की जाय, वह थोड़ी है ।

पौरा:-पिककूजितमिवैतन्मधुरतरमालापमुपश्रुत्य सुमनोभिः सुश्रूषितेन वसन्तेनेव यतिपतिनानुगृहीतं सुतरूपशोभास्थानमुद्यानमिव तत्सदनमुपाययुस्तदानीमिति

अर्थ - इस प्रकार इनके कोयल सरीखे मीठे गाने को सुनकर नगर के लोग भी इनके घर पर आकर इकट्ठे हो गये । कैसा है घर, एक बगीचे के समान सुतरू शोभा का स्थान है बगीचे में जिस प्रकार अच्छे वृक्ष होते हैं उसी प्रकार घर बाल-बच्चों से युक्त है, वसन्त की कृपा होने पर बगीचे की और भी शोभा बढ़ जाती है, उसी प्रकार ऋषिराज के पधारने से वह और भी पवित्र बन गया है । वसन्त जिस प्रकार से फूलों से युक्त होता है, उसी प्रकार ऋषिवर भी देवों द्वारा पूज्य हैं ।

यतिः- अवसरमुपेत्य वचोगुप्तिमतीत्य भाषासमितिमवलम्वितवान्।

अर्थ - समय पाकर यतिराज ने भी अपनी वचनगुप्ति को छोड़ कर भाषासमिति का आश्रय लिया, अर्थात् उपदेश देने लगे -

अहो संसारकान्तारे चतुष्पथसमन्विते ।
मार्गत्रयन्तु संरुद्धमतीवदुरतिक्रमैः ॥२८॥
नृभवो नाम पन्थैकोऽस्त्यभीष्टस्थानदायकः ।
तस्मिंश्चेन्द्रियसंज्ञानां लुण्टाकानामुपक्रमः ॥२९॥
तेभ्योऽतिवर्तनं कस्मात् त्यागसन्नाहकं विना ।
भवेदेतस्य पान्थस्य रत्नत्रितयाधारिणः ॥३०॥

अर्थ - देखों भाइयों, यह संसार एक भयानक जङ्गल के समान है जिसके कि भीतर चारों ओर जाने वाले चार मार्ग हैं उनमें से तीन मार्ग तो अनेक प्रकार के उपद्रवों से व्याप्त हैं, अतएव उनमें फंसा हुआ जीव पार ही नहीं पा सकता । हाँ, एक यह मनुष्य जन्मरूप मार्ग ऐसा है जिससे कि यदि ठीक प्रयत्न किया जाय तो संसार का अन्त किया जा सकता है । किन्तु इसमें भी इन्द्रिय विषयरूप लुटेरे अपना अड्डा जमाये

हुए हैं उनसे बचकर पार हो जाना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय के धारक इस जीवात्मा के लिये आसान बात नहीं हैं जब तक कि यह त्यागरूप कवच पहिनकर अपने आपको सुरक्षित न रखे ।

व्रजत्यधः संग्रहतस्त्यागादूर्ध्वं तुलान्तवत् ।
देहधारीह संसारे त्यागं कुर्यादतः सुधीः ॥ ३१ ॥

अर्थ - जैसे कि तराजू के पलड़े में कोई भी वस्तु यदि डालते जावें तो वह नीचे की ओर जाता है और ज्यों-ज्यों उसमें से निकाल बाहर करते जावें, त्यों-त्यों वह ऊपर उठता जाता है । वैसे ही संसारी प्राणी का हाल है, वह भी जब बाह्य पदार्थों को ग्रहण करता है तो नरकादिक अधोगतियों को प्राप्त होता है, किन्तु त्याग करने वाला उच्चगति पाता है, ऐसा सोच कर समझदार मनुष्य प्रति समय त्याग का ध्यान रखे।

एकदेशपरित्यागात् सुगतिं श्रयते पुमान् ।
अपि पूर्णपरित्यागादपुनर्भवतामहो ॥३२॥

अर्थ - वह त्याग दो प्रकार से किया जाता है - एक देश और सर्व देश । किसी भी चलते फिरते जीव को जान बूझ कर नहीं मारना, किसी की निन्दा-चुगली नहीं करना, किसी के भी अधिकार की वस्तु को न लेना, दूसरे की बहू बेटी पर बुरी दृष्टि न डालना और प्रत्येक बात में सन्तोष धारण करके तृष्णा से दूर रहना इत्यादि एक देश त्याग है । किन्तु क्या जङ्गम और क्या स्थावर किसी भी जीव को किसी भी हालत में न सताना, जिसमें किसी का भी बिगाड़ हो ऐसा वचन कभी नहीं बोलना, किसी की भी बिना दी हुई कोई भी वस्तु नहीं लेना, स्त्री मात्र से दूर रहना और संसार की किसी वस्तु को नहीं लेना, स्त्री मात्र से दूर रहना और संसार की किसी अपनाना, किसी से भी मोह-ममता नहीं रखना, सर्व देश त्याग कहलाता वस्तु को नहीं है । एक देश त्याग

करने से यह जीव दुर्गति से बच कर सद्‌गति को प्राप्त होता है । किन्तु जन्म-मरण के दुःख स्वरूप संसार से तो बिना सम्पूर्ण त्याग के नहीं छूट सकता है।

तत्रापि कायिकस्त्यागः सुशको भुवि वर्तते ।
क्रियते छद्मसंकल्पैः किन्तु हृज्जो महात्मभिः ।।३३।।

अर्थ - उस में भी त्याग दो प्रकार से होता है - एक तो कायिक जो शरीर मात्र से होता है । दूसरा मानसिक जो कि हृदय से हुआ करता है । कायिक त्याग उतना कठिन नहीं है सहज है, उसे हर कोई आसानी से कर सकता है । किन्तु मानसिक त्याग करना ही कठिन है उसे बड़े आदमी ही कर सकते हैं, या यों कहो कि मानसिक त्याग करने वाले ही बड़े होते हैं ।

छायेव दूरमभ्येति गृहीतुमभिधावतः ।
सम्पत्तिरपि लोकेऽस्मिन् वैपरीत्येऽनुवर्तिनी ।।३४।।

अर्थ - देखो- हमारी छाया को पकड़ने के लिए हम उसके सम्मुख दौड़ें तो वह आगे दौड़ती चली जायेगी, हमारे हाथ नहीं आवेगी हाँ, यदि हम उससे मुख मोड़ कर चलें तो वह भी हमारे पीछे-पीछे चलेगी, हमारा साथ नहीं छोड़ेगी । बस ऐसा ही हाल सम्पत्ति का भी है उसको हम पकड़े रखना चाहते हैं, इसीलिए वह हमें नहीं प्राप्त होती । हमको चाहिए कि हम इससे उल्टा करें अर्थात् सम्पत्ति का त्याग करें और विपत्ति से न डर कर उसका सामना करें ।

भयन्न विपदोऽभ्येति न सम्पदि च मुह्यति ।
तटस्थ इव सर्वत्र महात्मा परिदृश्यते ।।३५।।

अर्थ - जो मनुष्य विपत्ति से डर कर दूर नहीं भागता और सम्पत्ति में मोहित नहीं होता, किन्तु दोनों की दशाओं में मध्यस्थ बना रहता है वही महापुरुष कहलाता है ।

त्यजत्येक: सम्पदन्तु तयान्ते त्यज्यतेऽथवा ।
त्यक्तो रोदितुमेतीति नरस्तां सन्त्यजेत्स्वयम् ॥३६॥

अर्थ - एक आदमी तो सम्पदा को त्यागता है दूसरा वह है जो उसे त्यागना नहीं चाहता है, किन्तु वह कभी न कभी या अन्त में उसके द्वारा त्याग दिया जाता है अर्थात् सम्पदा ही उसे छोड़कर दूर हो जाती है । जब सम्पदा दूर होती है तो वह रोता है । इन दोनों में यह बड़ा अन्तर है । समझदार मनुष्य वही है जो कि अपने आप सम्पत्ति को छोड़कर प्रसन्नता-पूर्वक उससे दूर हो जाता है ।

इन्द्रजालोपमा सम्पदायुर्हरिधृतैणवत् ।
अर्जयन्ति ततस्ताभ्यां परमार्थं मनीषिण: ॥३७॥

अर्थ - संसार की सुख सम्पत्ति इन्द्रजाल के समान देखते-देखते नष्ट हो जाने वाली है और मनुष्य का जीवन भी सिंह की चंगुल में फंसे हुए हिरण की भांति क्षणिक है, ऐसा सोचकर समझदार लोग तो इन दोनों के द्वारा परमार्थ का साधन किया करते हैं ।

इति साधुसुधांशोर्वचनामृतं पोत्वा स्वास्थ्यमुपलभमानो विषोपयोग-सज्जातमोहतो रहित: सन्नखिलानुपाधिप्रकारानतीत्य यथाजातरूपतामनुजग्राह सोमदत्त: ।

अर्थ - इस प्रकार उन साधुरूप चन्द्रमा के द्वारा वर्षाये हुये वचनरूप अमृत को पीकर विषोपयोग से (विषा के संयोग से या विष के खा जाने से) उत्पन्न हुए मोह से रहित हो कर सोमदत्त ने सब प्रकार के परिग्रहों को, और विकार भावों को त्यागकर स्वस्थ होते हुए नग्न दिगम्बर-पना अंगीकार कर लिया ।

विषा-सोमदत्तशैत्यानुभावमतीत्य तपोधनप्रसंङ्गेण विकासमाश्रितवती कमलिनीव तपसि चित्तं चकार ।

अर्थ - जिस प्रकार कमलिनी सूर्य का समागम पाकर, रात्रि में चन्द्रमा के द्वारा प्राप्त हुए अपने उदास भाव को छोड़कर प्रफुल्लित होती हुई सूर्य की घाम का स्वागत करती है, वैसे ही विषा ने भी उस तपस्वी के उपदेश से सोमदत्त के साथ होने वाले मोह भाव को त्यागकर प्रसन्नता पूर्वक तप करने का विचार किया ।

वसन्तसेना वेश्यापि-तत्र वसन्तमपि न वसन्तं सुकृतकाममप्यकृतकामं सुमन:स्थानमपि कौतुकपरिवर्जितं साधशिरोमणिं दृष्ट्वा कौतुक-विहीनत्वमात्मनेऽनुमन्यमाना च तत्कवित्वमधिकुर्वाणेव सुवृत्तभावं सम्पादयितुमुद्यताऽभूत् ।

अर्थ - काम की वासना से रहित, उत्तम कृत्य के चाहने वाले चञ्चलता से वर्जित पवित्र मन के धारक, सज्जनों के मुखिया उस साधु शिरोमणि को वहाँ पर पाकर उस वसन्तसेना वेश्या ने भी विचार किया कि जब ऐसे लोगों को ही संसार में सुख प्रतीत नहीं हुआ तो फिर मेरे लिए ही इन दुनियादारीके कार्यों में सुख कहाँ से आया। अतएव कविपने को प्राप्त होती हुई ही मानों वह सुवृत्त भाव को प्राप्त हुई अर्थात् कवि जिस प्रकार छन्द बनाया करता है वैसे वह भी अपनी आत्मा का अनुभव करके चारित्र धारण करने को तैयार हो गई ।

सोमदत्तस्तु तत्र पिच्छिकाकमण्डलुमात्रसहकारिणमाचेलक्योद्योतकारिणं दिगम्बरवेषमङ्गीचकार ।

अर्थ - सोमदत्त ने तो दिगम्बर दीक्षा धारण की, जहाँ पर कि सिवाय एक मयूरपिच्छी और एक कमण्डलु इन दो के और कुछ भी नहीं रख सकता, शरीर पर एक धागा भी नहीं होता ।

विषा-वसन्तसेने-एकमेवशाटकमात्रविशेषमार्याव्रत मङ्गीचक्रतु: ।

अर्थ - विषा और वसन्तसेना इन दोनों ने एक साड़ी मात्र और स्वीकार की और सभी परिग्रह का त्याग करके उन दोनों ने आर्या के व्रत स्वीकार किये ।

सर्वार्थसिद्धिं खलु सोम आप वसन्तसेना च विषा निरापत् ।
स्वर्गं यथायोग्यमिता तपस्या-बलेन सूक्ते रिति वा समस्या ॥ ३८ ॥

अर्थ - तपस्या करके सोमदत्त तो सर्वार्थ सिद्धि पहुँच गया। विषा और वसन्तसेना भी यथायोग्य अपनी तपस्या के अनुसार स्वर्ग को गईं। यह हमारे पूर्व महापुरुषों की वाणी का सार है, सो मैंने आप लोगों के सम्मुख रखा है ।

अहिंसायाः फलं विश्वसमक्षमिति वर्तते ।
यदास्वाद्यामरत्वं द्रागनुयान्तु मनीषिणः ॥३९॥

अर्थ - मैंने यह अहिंसा का फल संसार के समक्ष स्पष्ट करके दिखलाया है जिसको देखकर या स्वयं प..कर बुद्धिमान सज्जन लोग शीघ्र ही स्वर्ग के भागी बने ।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेनाऽऽकारिः दयोदयप्रकरणं यत्सप्तलम्बात्मक-
मित्येतत्समुदेतु वीक्षितुमहो सद्यो मनीषी न कः ॥७॥

अर्थ - इस प्रकार श्रीमान सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर ने इस दयोदयम्पू की सात लम्बों में रचना की । इसे कौन मनस्वी मनुष्य नहीं पढ़ना चाहेगा ।

अन्तिम-मंगल-कामना -

भूपो भवेन्नीतिसमुद्रसेतुः
राष्ट्रं तु निष्कण्टकभावमेतु ।
मनाङ् न हि स्याद्भयविस्मयादि
लोकस्य चित्तं प्रभवेत् प्रसादि ॥१॥

दिशेदेतादृशीं दृष्टिं श्रीमान् वीरजिनप्रभुः ।
तंत्रमेतत् पठेन्नर्म शर्म धर्म लभेत भूः ॥ २ ॥

अर्थ - राजा न्याय-नीति रूप समुद्र का सेतु (पथगामी) हो, राष्ट्र निःकंटक भाव को प्राप्त हो, संसार में रंच मात्र भी भय विस्मय, रोग, शोक आदि न रहें और लोगों का चित्त सदा प्रसन्न रहे । श्रीमान् वीर जिनेन्द्र प्रभु इस प्रकार की दृष्टि को देवें जिससे कि लोग इस दया भाव को प्रकट करने वाले शास्त्र को पढ़े और सारा भूमण्डल धर्म, सुख और शान्ति को प्राप्त हो ॥ १-२ ॥

इन दोनों श्लोकों के प्रत्येक चरण के पहले अक्षर को मिलाने पर 'भूरामलोदित' वाक्य बनता है जिसका अर्थ यह है कि इस शास्त्र को भूरामल ने बनाया है ।

श्लोक-अनुक्रमणिका

ज

ट

ठ

त

द

ध

न

प

ब

भ

म

य

र

ल

व

ह

उद्धृत-गद्य-पद्यानुक्रमणी

उद्धृत-ग्रन्थनाम-सूची